ओ३म्

एकं ह वै देवा व्रतं चरन्ति यत् सत्यं तस्मादु सत्यमेव वदेत् ।
(शत० ब्रा० १४-१-१-३३)

'देवसभा' के मञ्चन के अवसर का एक दृश्य

आचार्या प्रज्ञा देवी
पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी

ओ३म्

एतत् खलु वै देवानाम् अपराजितमायतनं यद् यज्ञः।
(तै० ब्रा० ३-३-७-६)

आचार्या प्रज्ञा देवी
पाणिनि कन्या महाविद्यालय
वाराणसी-१०

संङ्कलयित्री-
स्नातिका-प्रियंवदा शास्त्री
२६ मई सन् १९८३

कृति को नमन

अपनी लेखनी से लिख कर जिस आह्लाददायिनी 'देवसभा' का मञ्चन आज से २० वर्ष पूर्व पूजनीया बहिन जी (स्वनामधन्या आचार्या डा० प्रज्ञा देवी जी) ने विद्यालयीय उत्सव पर कराया था उसका पुनः मञ्चन तथा प्रकाशित प्रतियाँ समाप्त हो जाने के कारण उसका पुनः प्रकाशन भी इस समय बहुत प्रासंगिक प्रतीत हो रहा है। जगद्गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदरूपी समुद्र में सभी मत मतान्तरों को विलीन करके एक वैदिक धर्म का सत्यप्रकाश फैलाने का आह्वान किया था तथा यही कह कर आर्यसमाज की स्थापना अब से १२५ वर्ष पूर्व की थी। इस अद्वितीय स्थापना की द्वितीय रजत जयन्ती पर जहाँ हम गौरवान्वित हैं, वहीं सच का सूरज कोने-कोने तक पहुँच जाये इस संकल्प को भी इस कृति के माध्यम से दुहराने का प्रयास कर रहे हैं।

नीतिकार का एक वचन है **'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्'** अर्थात् सच बोलो पर लट्ठमार भाषा में नहीं पुचकार कर कहो वह अधिक प्रभावी और ग्राह्य होगा। पूजनीया बहिन जी द्वारा प्रस्तुत इस रचना में हमें इसी रोचकता के दर्शन होते हैं। इतनी अदा से इसमें मैल को धोया है कि स्वच्छता भी चमक गई और धुलाई का दर्द भी नहीं हुआ। बलिहारी जाती हूँ पू० बहिन जी के कौशल पर, कैसा अनूठा उनका चिन्तन था। प्रमाणपुरस्सर खोजपूर्ण बातें सहजता से बच्चों के मुख से कहला दीं, सभी गद्गद् हो गये।

वस्तुतः सच वह नहीं है जिसे कुछ एक मानते हों-अपनाते हों कुछ एक नहीं, अपितु सच्चाई तो वह है जो प्रत्येक के दिल में राज करे। आज अनेकों मान्यताओं को समर्थन प्राप्त होना, नित-नये देवी देवताओं का उपज जाना यह प्रमाणित करता है कि सत्यता के संस्पर्श से वे सभी

दूर हैं। इस समय अनेकों वर्षों की जमी हुई काई की खुरचना आसान नहीं है पर सत्यग्राही व्यक्ति ही स्थिर सुखी रहेगा यह सच है। उपनिषद्कार की यह चेतावनी बहुत गम्भीर है कि-

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।।

॥ केन, २।५ ॥

अर्थात् - तूने ब्रह्म को यहाँ इस जन्म में जान लिया तो ठीक है अगर यहाँ नहीं जाना और ऐसे ही चला गया तो विनाश ही विनाश है। ज्ञानी पुरुष मूल तत्त्व को जान कर इस जन्म-मरण से मुक्त होते हैं।

पर यदि पूरी आयु हमने अज्ञान को ही ज्ञान समझ कर बिता दी, पचड़े-बखेड़े में पड़े रहे और समझते रहे कि हम सर्वथा सही मार्ग में हैं तो वह अज्ञान हमारे समय-धन-शक्ति को व्यर्थ तो करता ही है,हमें उसकी प्रतीति नहीं होती, इसके अतिरिक्त हमें कालान्तर में गढ़े में भी गिराता है, अतः दुराग्रह छोड़कर सत्य के पक्षपाती बन कर हम वेदोपदेश श्रवण करें-समझें और सत्पथ के राही बन जायें। यही वैदिक धर्म की पुकार है, कि सत्य के मुख पर पड़े पर्दे को हटा दें-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।। ईश, १५।।

सज्जनवृन्द !

हम किसी भी कार्य को निष्ठापूर्वक करना चाहें तो उसको गति मिल ही जाती है यह अनुभूत है। इस उपयोगी रचना के पुनर्मुद्रण में हम जुटे हुए थे इतने में हमारी श्रद्धेया बहिन जी **श्रीमती ईश्वरी आर्या जी (धर्मपत्नी-धुरन्धर वक्ता स्व० श्री पं० रामनारायण शास्त्री जी, पटना)** दो दिन यहाँ ठहरीं और उत्सव में कुछ सेवा कार्य करने की विनम्र इच्छा व्यक्त करते हुए इसके प्रकाशन व्यय का भार अपने ऊपर लेने की घोषणा उन्होंने की। अब इसका द्वितीय संस्करण उनकी स्व० पूज्या माता जी

'वृन्दा देवी जी' की स्मृति में प्रकाशित हो रहा है जो एक बहुत सौम्य, सात्त्विक, कलाप्रिय देवी थीं। हम विद्यालय परिवार की ओर से एतदर्थ उनका हृदय से साधुवाद करते हैं। उनके सरल-सात्त्विक धर्मपरायण हृदय में सर्वदा ही कुछ न कुछ करने की अग्नि प्रज्ज्वलित रहती है यह उनके बड़े उत्कृष्ट संस्कारों का प्रतिफल है, सर्वत्र ऐसा नहीं देखा जाता।

इस प्रस्तुत संस्करण की विशेषता यह है कि **'प्रिय नन्दिता शास्त्री जी'** ने **विश्वकर्मा भगवान्, सरस्वती देवी, गायत्री माता** इन तीन देवों की वृद्धि भी पूर्ववत् सुचारुता से कर दी है। पूजनीया बहिन जी की इन तदनुरुप प्रिय पुत्री को उनका अमोघ आशीष सर्वदा प्राप्त है अत: अब कुछ कहने को शेष नहीं रहता।

मैं तो कुछ शब्दों को सँजो कर मात्र इस कृति की ओजस्विनी कर्त्री को नमन कर रही हूँ। प्रभु का धन्यवाद करती हूँ कि उसने हमें कुछ आत्मिक बल प्रदान किया, सुपथ पर लगाया। इति।

चैत्र शु० प्रतिपदा, वि.सं.२०५७
आर्यसमाज स्थापना दिवस
५ अप्रैल २००० ई०

विनम्रभावेन-
मेधा देवी
प्राचार्या, पाणिनि कन्या महाविद्यालय
वाराणसी-१० (उ०प्र०)
दूरभाषांक:- (०५४२) ३६०३४०

पूजनीया माँ की स्मृति में-

(द्वारा श्रीमती ईश्वरी आर्या जी, पटना)
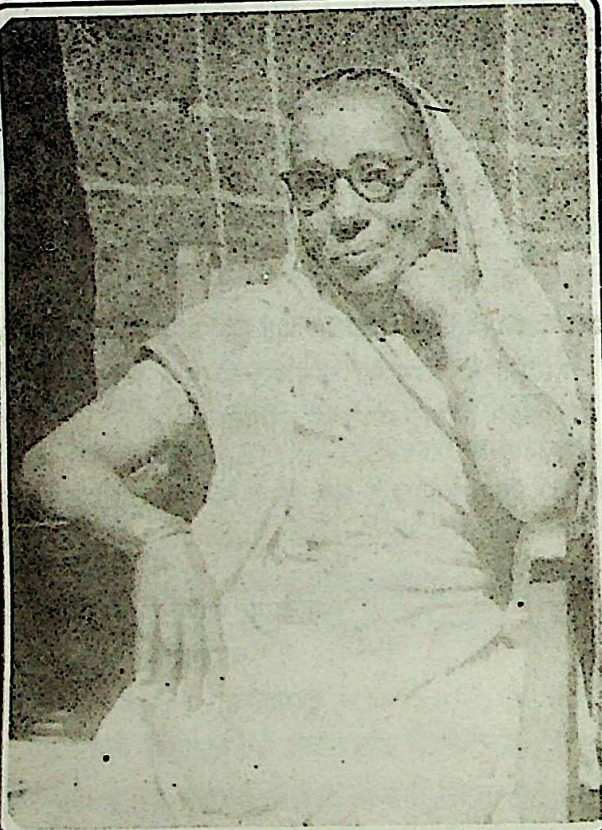
कला विभूषिता, शुचितासम्पन्ना, धार्मिक, सरल-सात्त्विक माता

स्व० श्रीमती वृन्दा देवी जी

निधन २ अप्रैल १९८७

पूजनीया बहिनजी आचार्या डा० प्रज्ञा देवी जी द्वारा ३१मई १९८० में इस देव सभा के मंचन पर लिखे गये-

मेरा यह परम सौभाग्य रहा है कि मुझे विरासत में जन्म से ही आर्यसमाज मिला। मेरी ममतामयी पू० माता ने सैकड़ों संस्कृत एवं हिन्दी के श्लोक कवितायें गीत अपनी जानकारी के अनुसार हम भाई बहिनों को बाल्यावस्था में ही कण्ठ करा दिये थे। जिनमें एक गीत की कुछ पंक्तियां हैं-

एक दिन देवसभा में रंग छाये थे अपार
लगी सब लड़ी भीड़ भई थी घनी
दुर्गा आई ९ करोड़ शम्भू आये ६ करोड़
सनि सभापति उचारें कहो अपनी विपदायें
गुजरे तुमपे कैसी कैसी सब सुनाओ बैठ आज।

एक दिन....... इत्यादि।

बाल्यकाल में प्राप्त संस्कार अत्यन्त प्रबल होते हैं किन्तु भाव समझने की दृष्टि से इस कण्ठाग्र सामग्री का पूरा लाभ आगे चलकर ही होता है। मुझे भी इस लम्बे गीत का अर्थ कब समझ में आया यह स्मरण नहीं किन्तु जब समझ में आया तो बड़ा चमत्कार सा लगा। मन ही मन सोचने लगी कि इसे दृश्य काव्य के रूप में परिवर्तित करके सुधारवाद की दृष्टि से इसे और रोचक एवं उपयोगी बनाया जाये। विचार आते ही सामग्री एकत्रित की गई और नाटकीय ढंग की मंचन व्यवस्था करके इसे **"देव सभा"** नाम दिया गया। १९८० के वार्षिकोत्सव के अवसर पर

नई सज धज के साथ जैसे ही देवसभा के प्रस्तुतीकरण से पूर्व "**एक दिन देवसभा में रंग छाये थे अपार**" यह गीत रुक-रुक कर मंच के पार्श्व से बोला गया तो तत्काल श्रोतागणों में अनेक पुराने आर्य झूम कर बोल उठे - "**ओहो! दादा बस्तीराम, दादा बस्तीराम का यह गीत है।**" श्रोतागणों की इस पुकार के पश्चात् मुझे यह बोध हुआ कि बचपन में याद किया गया यह मेरा गीत जिसका मंचन आज "**देव सभा**" के रूप में हो रहा है वह **दादा बस्तीराम** का रचित गीत है। अनजान में मेरी आँखें छलछला आईं, आह! **दादा बस्तीराम** जिनका जीवन भड़कते शोले के समान था, जिन्हें महर्षि दयानन्द से वाद-विवाद करने का अवसर मिला था और अन्त में महर्षि की अकाट्य युक्तियों के समक्ष जिन्होंने पुराणों को असम्भव गप्पों की खान मान पूर्ण वैदिक धर्म स्वीकार किया था, जिनके लिये आज भी आर्यों के हृदय में कितना गहरा मान है, काश! वे होते और अपने गीत के आधार पर बने इस दृश्य-श्रव्य वाचन को सुन पाते! पुराने आर्य प्रचारकों में क्या तड़प थी? मात्र परम्परा न पीटकर प्रचारार्थ स्वाहुत जीवन ही आर्य समाज को जीवित कर सकता है। यह सोचकर मेरा हृदय मर्माहत हो उठा।

माननीय पाठकवृन्द! उस समय "**देवसभा**" के मंचन के अवसर पर कन्याओं की सशक्त सप्रमाण चुटीली व्यंगावलियों ने श्रोताओं को हर्ष विभोर ही नहीं किया था अपितु नई से नई जानकारी मिलने से वे आश्चर्यचकित भी हुवे। कतिपय लोग कहते सुनते गये- "अरे! हनुमान् बन्दर नहीं थे? यह तो आज ही हम जान पाये सारी जिन्दगी हम धोखे में रहे"...आदि आदि।

इस शिक्षाप्रद देव-सभा के कार्यक्रम को छपाने का आग्रह लोगों ने उसी समय मुझसे किया पर हम समयाभाव से यह कार्य न कर पाये थे जिसे अब दो वर्षों के पश्चात् किया जा रहा है। सम्प्रति इस पुस्तिका का प्रकाशन धर्मनिष्ठ **श्री सेठ लल्लूराम जी आर्य,** मनौरी (इलाहाबाद) द्वारा अपनी पूज्या माता **श्रीमती सुखिनी देवी जी** की पुण्य स्मृति में हो रहा है तदर्थ मैं उनकी विशेष आभारी हूँ। इससे पूर्व श्री सेठ जी ने 'सरलार्थ सन्ध्या' भी छपवाकर लोगों में वितरित करवायी थी अब यह उनके द्वारा दूसरा प्रकाशन है। **श्री लल्लूराम जी** की पूज्या माता जी बड़ी ही धार्मिक सरल विचारों की महिला थीं। उनका एक छाया चित्र इस पुस्तिका में प्रकाशित करने योग्य अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न हो सका, इसका हमें खेद है।

मञ्चन के अवसर पर **'देवसभा'** के लेखन कार्य में **कु० ज्योतिष्मती** व्याकरणाचार्या, पुत्री **नन्दिता** तथा बेटी **प्रतिभा** ने मेरा सहयोग किया था तदर्थ उनके प्रति मेरी अशेष शुभ कामनायें समर्पित हैं। इस वर्ष पुत्री **प्रियंवदा** एवं बेटी **माधुरी** के परिश्रम से यह पुस्तिका मुद्रित होकर आपके समक्ष आ रही है तदर्थ इन पुत्रियों को भूयो भूयः मेरा आशीर्वाद है।

परमात्मा की असीम अनुकम्पा से यह पुस्तिका प्रकाशित रूप में आ रही है इसकी मुझे प्रसन्नता है।

निवेदिका-
प्रज्ञा देवी, आचार्या-
पाणिनि कन्या महाविद्यालय
वाराणसी-१०

वैशाख पूर्णिमा
वि०सं०२०४०
२६ मई. १९८३ ई०

सन् १९८३ में प्रकाशित इस नाटिका की तत्कालीन
संकलनकर्त्री का निवेदन -

किञ्चित् विनिवेदनम्

प्रस्तुत 'देवसभा' पूज्या कुलमाता जी (मम आराध्या पूजनीया आचार्या पण्डिता प्रज्ञा देवी जी) के उर्वर मस्तिष्क की ही अनोखी उपज है। आपकी लोकहित-परिपूर्ण दूरदृष्टि ने देवी देवताओं के सम्बन्ध में प्रसृत मिथ्या धारणाओं के विलयन हेतु 'देवसभा' को जन्म दिया। यद्यपि इस 'देवसभा' का नाटकीय ढंग से प्रस्तुतीकरण आज से तीन वर्ष पूर्व ही विद्यालयीय बहिनों द्वारा हुआ परन्तु इसके स्वरूप का सुपरिपाक तो पूज्या आचार्या जी के मस्तिष्क में अनेकों वर्ष पूर्व हो चुका था। नवम वार्षिकोत्सव में इसके भव्य मञ्चन को देखकर सभी श्रोतागण हर्ष विभोर हो गये। अत्यन्त शिक्षाप्रद, उपादेय सामग्री एवं सुसंयतता इस दृश्य काव्य की अनूठी विशेषता थी। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण यह उपस्थित जन समुदाय द्वारा इतनी अधिक पसन्द की गयी कि कतिपय महानुभावों ने इसे अपने सुदूर प्रान्तों में मञ्चन कराने के लिये लिखित प्रतियों की मांग की और हमें यह कार्य उनके आग्रह पर करके देना पड़ा। अनेकों आर्य भाई तो इसे टेप करके अपनी-२ समाजों में प्रचारार्थ ले गये। इसकी प्रतिलिपि की निरन्तर माँग देख यही उचित समझा गया कि इसे प्रकाशित ही करा दिया जाये। आज ऐसी प्रभावशालिनी देवसभा को पुस्तकाकार के रूप में प्रस्तुत करते हुए सचमुच महान् आह्लाद है।

यद्यपि मेरा देश सम्प्रति सभी क्षेत्रों में भीषण संकट से गुजर रहा है परन्तु धार्मिक क्षेत्र की दशा तो अत्यन्त ही शोचनीय है। मैं समझती हूँ कि इस क्षेत्र को पथभ्रष्ट करने में सर्वाधिक सहयोग महर्षि व्यास के नाम पर १८ पुराणों १८ उपपुराणों को गढ़ने वाले पुराणकर्ताओं ने ही दिया है। इन स्वार्थ-सिन्धुओं ने चाहे जिस स्वार्थवश यह कार्य करने का

दुस्साहस किया हो परन्तु उसका दुष्परिणाम एकेश्वर पूजक राम और कृष्ण की वंशज आर्य सन्तति को आज भुगतना पड़ रहा है। पुराणकारों ने एक ओर तो योगिराज श्रीकृष्ण, देवी राधा, महात्मा शिव आदि महापुरुषों को भगवान् एवं भगवती की गद्दी पर अधिष्ठित किया तो दूसरी ओर उन्हीं के जीवन चरित्र को पुराणों में घोर कलंकित करके दिखाया यह देख शरीर रोमाञ्चित हो उठता है। भगवत्प्राप्ति का अवतारवाद जैसा सरल उपाय बताकर तो पुराणों ने इस भोली भारतीय जनता को गुमराह ही कर दिया, तभी तो आज इसे अपने चंगुल में फँसाने के लिए नित्य नये भगवान् जन्म ले रहे हैं। क्या कहा जाये इस बिडम्बना को, कि "देश की बढ़ती हुई आबादी को नियन्त्रण में लाने के लिये जहां उचित अनुचित सभी निन्दनीय प्रयास तक शासन द्वारा किये जा रहे हैं वहीं पर भगवानों की बढ़ती आबादी पर रोक लगाने का धर्म-निरपेक्षता के नाम पर शासन द्वारा कोई प्रयास नहीं होता !!!

अभी इसी वर्ष जो काशी नगरी में भोले बाबा विश्वनाथ के १६ लाख के स्वर्णाभूषण की चोरी का दुष्काण्ड हुआ था जिसमें काशी नरेश ने विश्वनाथ बाबा के सम्बन्ध में यह भी कह दिया था कि ऐसा लगता है "विश्वनाथ बाबा का देवत्व अब समाप्त हो गया है" को देख और सुनकर भी यदि **"देवालयों में स्थित प्रस्तर मूर्तियाँ भगवान् नहीं हैं"** यह समझ में नहीं आता तो इसे आग्रहिल स्वभावगत मूढता ही मानना होगा। क्या मजे की बात है कि सारा पुलिस प्रशासन जिनकी चोरी का पता लगाने के लिए हैरान परेशान पड़ा हो वे विश्वपालक सर्वनियन्ता शिव जी चुपचाप मौन बैठे रहें!!! जिसकी चोरी होती है, बयान सबसे पहले वही आकर देता है किन्तु हाय! आज जड़ पत्थर को भगवान् संज्ञा देकर उन्हें इतना असहाय और दीन दिखा दिया गया कि मानव, जिसकी ईश्वर के सामने कोई बिसात नहीं, वह उनकी चोरी का पता लगाता घूम रहा है, यह कैसी भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता है? दुर्भाग्य है जब भगवान् के घर में

चोरियाँ होने लग गईं तो हम सबका क्या बनेगा!!!

ऐसी भयावह परिस्थिति में आज एतादृश उत्पथगामी धार्मिक क्षेत्र को जागृत एवं नियमित करने के लिये जनसाधारण के लिए बोधगम्य, रोचक, मनोरंजक, सरल पुस्तकों की महती आवश्यकता है। इस दृष्टि से यह **'देवसभा'** लघु पुस्तिका बड़ी उपादेय सिद्ध होगी, ऐसा हम सबको विश्वास है।

इस पुस्तिका में मेरा अपना कुछ नहीं है पुनरपि **पूज्या कुलमाता जी** की आज्ञा को शिरोधार्य मानकर संकलयित्री पद का निर्वाह मात्र करने के लिये ये दो चार शब्द लिखने की मैंने धृष्टता की है।

अन्त में हम कुलवासियों की सर्वविध प्रेरणास्रोत आराध्या माताजी जिन्होंने हम अबोध बालाओं को कलम पकड़ना सिखाने से लेकर आज इस अवस्था तक पहुँचाया है उन वन्दनीया माँ के प्रति तो कृतज्ञता ज्ञापन के लिये आज मेरी लेखनी और वाणी दोनों अशक्तता का अनुभव कर रही हैं। मेरा तो रोम-रोम सदैव आपका असीम कृतज्ञ एवं ऋणी रहेगा, इससे अधिक कुछ भी लिख पाना इस अवसर पर मेरे लिये असम्भव ही है।

मैं अपनी अग्रजा स्नातिका बहिन **ज्योतिष्मती** जी व्याकरणसूर्या, सहाध्यायिनी स्नेहशीला बहिन **नन्दिता जी, माधुरी जी, सूर्याजी** एवं **प्रतिभा जी** की भी अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अपनी **पूज्या माता जी** के हार्द अभिप्राय को समझकर लेखन एवं मुद्रणपत्रादि देखने में सहयोग किया है।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु-

प्रियंवदा 'स्नातिका'

पाणिनि कन्या महाविद्यालय

वाराणसी-१०

देवगण - नामानि

पृष्ठ संख्या

[पार्श्व गीत -

एक दिन देव सभा में रंग छाये थे अपार
एक दिन देव सभा में रंग छाये थे अपार
रंग छाये थे अपार बड़ी आयी थी बहार एक दिन...
दुर्गा आईं नौ करोड़ शम्भू आये छः करोड़ एक दिन..]

(लक्ष्मी की प्रतिनिधि द्वारा-माता विद्याधरी जी को माल्यार्पण)

लक्ष्मी देवी जी-

विद्वद्वरेण्ये भगवति देवि ! उपस्थित सज्जनों !

अपनी बहिनों द्वारा आयोजित इस सभा में मैं प्रतिनिधित्व कर रही हूँ आपकी अत्यन्त प्रसिद्ध और घर-घर में पूजी जाने वाली श्री लक्ष्मी जी का।

पुराण-कर्ताओं ने इसके विषय में अनेक असम्भव गप्पें लगाकर इसकी दुर्गति ही कर डाली है। इन लक्ष्मी जी को विष्णु-पत्नी के रूप में दिखाया गया है। कहा जाता है कि विष्णु जी के २४ अवतारों में लक्ष्मी जी सबके साथ आईं। तद्यथा- जब वे वामन बनकर उतरे तो लक्ष्मी जी पद्मा बनीं, जब वे परशुराम बने तो धरिणी बनीं, राम के साथ सीता और कृष्ण के साथ पहले राधा फिर रुक्मिणी बनकर उनका अनुगमन किया। दुर्भाग्य है भगवान् विष्णु जी का कि सब कुछ करने में समर्थ होते हुए भी उन्हें मानव बनकर इस मर्त्यलोक में जन्म लेना पड़ा ।

इनकी सवारियों पर भी जरा दृष्टि डालें इन्हें प्रायः कमल पुष्प पर बैठे या खड़े देखा गया है। बेचारा कमल जो अधिक से अधिक लक्ष्मी जी के पैर की एड़ी के बराबर है वह भला इनकी सवारी बनकर क्या सुख देगा? सिवाय इसके कि सरोवर की शोभा को शतगुणित कर देने वाला पुष्प अब लक्ष्मी जी के पैरों से दबकर सड़ जाये। कहीं कहीं उलूक भी इनकी सवारी मानी गई है। वही उलूक जिसको दिन में कुछ नहीं दिखाई देता। वह अन्धा उलूक उन्हें सुख देने के बजाय खड्ड में नहीं गिरा देगा?

(अन्य दरबारी बहिनें- जरूर गिरा देगा, अवश्य गिरा देगा)

पौराणिकों ने लक्ष्मी देवी के यथार्थ स्वरूप को न समझकर उसे शरीरधारिणी देवी के रूप में खड़ा कर दिया और उनके विषय में यह प्रसिद्ध कर दिया कि इनके चार हाथों में से एक हाथ से स्वर्ण मुद्रायें ऐसे झरती हैं जैसे झरने से जल। वस्तुत: यदि ऐसी बात है तो सुन लो लक्ष्मी के भक्तो ! फैक्ट्रियां और कारखाने आदि सब कुछ बन्द कर दो, इनकी क्या आवश्यकता है? जाओ लक्ष्मी के हाथों से झरती हुई स्वर्ण मुद्राओं द्वारा अपने गृह भवन भरकर चैन की वंशी बजाओ किन्तु असलियत तो यह है कि गृह भवन की बात छोड़ो एक छोटा झोला भी आप नहीं भर सकते बल्कि इसके विपरीत लक्ष्मी की प्रतिमा आपसे ही धन लेकर अपने घर भवन को भरती है। मैं व्यर्थ की बातें बताकर आपका समय नहीं नाश करना चाहती अत: आइये! आप भूले-भटकों को लक्ष्मी की यथार्थता का बोध कराऊँ-

लक्ष्मी शब्द **'लक्षेर्मुट् च[1]'** इस उणादि से **'लक्ष दर्शनाङ्कनयो:'** इस धातु से मुट् कर लेने पर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ ऋषिवर दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास में इस प्रकार किया है- **"यो लक्षयति चिह्नयति चराचरं जगत् अथवा वेदै: आप्तै: योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मी:"** अर्थात् जो चराचर जगत् को देखता और उसे पर्वतों, वृक्षों, मृत्तिका आदि से चिह्नित करता अथवा जो योगी आप्त - जनों का लक्ष्य है उसे लक्ष्मी कहते हैं ये सब गुण परमात्मा में ही सम्भव हैं अत: वही प्रभु लक्ष्मी है। निरुक्त में सबसे अभीप्सित वस्तु को लक्ष्मी कहा गया है अत: प्रकरणानुसार शोभा धन और बल आदि भी कहीं २ लक्ष्मी शब्द के वाचक हो सकते हैं किन्तु शरीरधारिणी देवी कभी नहीं। आम जनता में यह दृढ़ विश्वास है कि दीपावली के दिन उसी घर में लक्ष्मी आयेगी जिस घर में दीपकों का सबसे अधिक प्रकाश होगा।

माननीय बन्धुओ ! आपके घर में अवश्यमेव लक्ष्मी आकर आपका स्वागत करेगी किन्तु तब, जब आप अपने गृह मंदिर को ही नहीं बल्कि अपने हृदय मंदिर को भी सत्य ज्ञान के आलोक से अधिकाधिक आलोकित एवं उजागर कर देंगे। बस यही कहकर मैं अपना स्थान ग्रहण करती हूँ।

●

१. उणा० ३।१६०

दुर्गा देवी जी-

आदरणीये विदुषि मातः ! उपस्थित श्रोतृवृन्द !

अभी आपने लक्ष्मी जी की दुर्दशा के विषय में सुना, किन्तु मेरी तो उससे भी दयनीय स्थिति है। कैसे कहूँ ? एक़ तरफ तो पाखण्डी लोगों ने मेरी महिमा के पहाड़ खड़े कर दिये हैं। यथा **'दुर्गासप्तशती'** में **'सैव विश्वं प्रसूयते'** कहकर मुझे सृष्टि की सर्जन पालन एवं संहारकर्त्री बताया है। निखिल धन सम्पदा ऐश्वर्य देने वाली लक्ष्मी के रूप में मुझे भी सम्बोधित किया है तथा अखण्ड शक्ति-सम्पन्ना एवं दुःखों की दमनकर्त्री पदे-पदे मुझे कहा है। मेरी उत्पत्ति देवों के दिव्य तेज से बताई है। दूसरी तरफ मृण्मय जड़ मूर्ति बनाकर शस्त्रास्त्रों से, दश भुजाओं से अलंकृत करके मुझे सिंह पर आसीन किया है। चैत्र और आश्विन इन दो मासों में क्रमशः भक्त जन नौ दिन तक बड़ी श्रद्धा से महाकाली, चामुण्डा, महिषासुरमर्दिनी, शाक्वरी इत्यादि विविध रूपों में पुष्टिकारक सुगन्धित पदार्थों को चढ़ाकर मेरी पूजा करते हैं, और तो और सब प्रकार से मुझे प्रसन्नचित्त करने के लिए जीवित भैंसों और बकरियों तक को काटकर मेरे नाम पर बलि चढ़ाई जाती है परन्तु दसवें दिन मेरी मूर्ति की शोभा यात्रा निकाल कर गंगा आदि नदी में विसर्जित कर दिया जाता है। उफ ! इससे भी बढ़कर दुर्दशा और किसी की क्या हो सकती है? यदि मेरा विसर्जन ही करना था तो जड़मति लोगों ने क्यों मुझे मिट्टी रौंद-रौंद कर बनाने में अपना समय और पैसा नाश किया और पशुओं के रक्त बहाये? इन मांसभक्षियों ने पशुओं की हत्या तो अपनी जुबान का चस्का पूरा करने के लिए की, पर मेरे नाम पर कहकर अपने आपको कसाई के स्थान पर धार्मिक कहलवा लिया।

ओ भोले भाइयो! बुद्धिरूपी चक्षुओं को खोलो। सत्य को पहचानो। क्या कभी जड़मूर्ति चेतन को शक्ति दे सकती है? क्या वह भक्त को धन-सम्पदा आदि से पूर्ण कर सकती है?

(दरबारी बहिनें- कभी नहीं)

जलता हुआ दीपक ही दूसरों को आलोकित कर सकता है, बुझा हुआ नहीं। यदि आप लोग उन पुष्टिकारक सुगन्धित वस्तुओं को यज्ञाग्निं में डाल देते तो सम्पूर्ण वायु मण्डल ही शुद्ध हो जाता जिससे अच्छी वर्षा तथा पुष्टिकारक अन्न होता, इससे बढ़कर संसार का और उपकार क्या हो सकता था।

आज हम देखते हैं कि ८०% गृहस्थ परिवार दु:ख के धाम बने हुए हैं इसका मूल कारण घर में बैठी हुई नारी की उपेक्षा ही है अत: सब लोगों को चाहिये कि बाह्य जड़ मूर्ति तथा नवरात्र जागरण के स्थान पर अपने घर की ही साक्षात् देवियों को जो समय आने पर देश धर्म के लिए आत्मोत्सर्ग तक कर देती हैं सन्तुष्ट करने का प्रयास करें फिर आप सब देखेंगे कि सुख-सम्पदा घर में स्वत: ही आकर नृत्य करेगी।

(तालियों की गड़गड़ाहट)

काली देवी जी-

हे परमसम्माननीये विदुषि देवि ! उपस्थित सज्जनों !

अब आप मुझ काली देवी का किस्सा सुनें। इस निराधार काल्पनिक काली माता की उत्पत्ति कर वंचकों ने अपना द्वार ही खोल लिया है। वंचकों ने मेरी आकृति ऐसी भयंकर बनायी है कि बताते हुए हृदय फटा जा रहा है, शब्द स्खलित हो रहे हैं। देखो, इन विचारशून्य लोगों की जड़मति को ! जिन्होंने मुझे फूलों के स्थान पर नरमुण्डों की माला पहना दी और कमर में करधनी रूपी स्वर्ण आभूषण के स्थान पर मनुष्यों के कटे करों की करधनी बनवाकर धारण करवा दी है। मेरी लाल चमकती जिह्वा को मुख से बाहर निकालकर यह प्रमाणित करा दिया है कि मैं सबके तरोताजा खून की प्यासी हूँ। पुराणों ने मेरा एक पैर कल्याण-कर्ता शिव के ऊपर स्थापित कर मुझे और भी कुत्सित बना दिया है। इस सम्बन्ध में पूरी अनर्गल कहानी इस प्रकार है- जब राक्षस रक्तबीज को मैंने मारा तब इस राक्षस को ब्रह्मा जी ने यह वरदान दिया कि जब भी उसका एक बूँद रक्त धरती पर गिरेगा वह हजारगुना शक्तिशाली होकर फिर जन्मेगा अतः मेरे द्वारा त्रिशूल से उसका शरीर बेध दिया गया। साथ ही मैंने उसके घाव पर अपने होठ लगा दिये जैसे-२ रक्त निकलता गया मैं उसका पान करती गयी। इससे मेरा क्रोध इतना बढ़ा कि जिस राक्षस को देखती उसे मार डालती। शिव ने देखा इससे सृष्टि का सन्तुलन बिगड़ जायेगा अतः मेरा मार्ग अपने शरीर से रोक लिया अतएव मेरा एक पैर शिव के शरीर पर रखकर मेरी मूर्ति बनायी जाती है।

उपस्थित श्रोतृवृन्द ! सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में कहीं पर भी मेरा नामोल्लेख नहीं। वस्तुतः मेरी कल्पना के पीछे भी ब्लैक का पैसा कमाना ही ध्येय है।

आप बिहार, बंगाल, आन्ध्र एवं मध्य प्रदेश में जाकर आज भी ऐसी काली माइयों के सैकड़ों की संख्या में दर्शन कर सकते हैं जिनके मुँह में करिखा पुता हुआ, लाल रंग से रंगी लोहे की जीभ बाहर निकली हुई, ऊँची साड़ी बांधे पैर में आवाज करने के लिए घुंघरू बंधे हुए क्योंकि मुँह से तो बोलना नहीं, एक हाथ में भीख का खप्पर और एक हाथ में दिखावटी तलवार लिए हुवे घर-घर में भीख मांगं रही हैं। लड़के उनके तारकोल पुते हुये शरीर को देखकर घबराकर छिप जाते हैं। तथा कुत्ते पीछे-२ भोंकने लग जाते हैं। इन काली माइयों का एक गिरोह होता है जो उन्हें यह आकृति प्रात: भीख मांगने के लिये प्रदान करता है और शाम होते-२ ये अपने २ गिरोह में वापिस आ जाती हैं। वहाँ भिक्षा का माल आपस में बांट लिया जाता है साथ ही रात्रि में चोरी के लिये उपयुक्त स्थान खोज कर आती हैं। भला बताइये इसका सम्बन्ध तस्करी से हुआ या धार्मिकता से ! ऐसी मनगढ़न्त माताओं का प्रचलन सरकारी तौर पर बन्द होना चाहिए क्योंकि भिक्षावृत्ति राष्ट्रीय अपमान है, अत: देश को धोखेबाजी से बचाना सरकार का कर्तव्य है।

(जोर की तालियां)

सरस्वती देवी-

या कुन्देन्दु-तुषारहारधवला या श्वेतपद्मासना
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या शुभ्रवस्त्रावृता ।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।

श्रद्धेया विद्याधरी देवी जी! समुपस्थित सज्जनों!

हाँ! तो आपने ठीक ही अनुमान लगाया है मेरी इस वन्दना को, उज्ज्वल धवल वस्त्रों को, रंग-रूप को देखकर कि मैं आपके द्वारा पूजित विद्या और वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती हूँ। हंस मेरा वाहन है, गौर वर्ण, श्वेत कमल पर आसीन,श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित, हाथ में वीणा तथा पुस्तक यही मेरा शृंगार है। मैं ब्रह्मा जी की मानस पुत्री हूँ। पुराणों के अनुसार मुझे कहीं विष्णु तो कहीं ब्रह्मा की भार्या भी बताया है। कहते हैं दुर्वासा ऋषि के शाप से जब मैंने कश्मीर में शारदा के नाम से जन्म ग्रहण किया तो मिथिला में ब्रह्मा जी ने मण्डन मिश्र के नाम से जन्म ग्रहण किया था। फिर दोनों का सम्बन्ध हो गया। एक बार शंकराचार्य जी के साथ शास्त्रार्थ में पराजित होकर मेरे पतिं को जब उनका शिष्य बनना पड़ा तो सहधर्मिणी होने के कारण मुझे भी साथ जाना पड़ा। बाद में मेरे नाम पर ही श्री शंकराचार्य जी ने अपने धर्म केन्द्र शृंगेरी को शारदा पीठ नाम से विभूषित किया था।वस्तुतः इतिहास प्रसिद्ध इस शास्त्रार्थ में मण्डन मिश्र की पत्नी भारती ने *''मैं इनकी अर्द्धांगिनी हूँ, अभी आपने आधे अंग को ही जीता है इसलिये पहले आप मुझसे शास्त्रार्थ करें, मुझे पराजित करके ही आप इन्हें अपना शिष्य बना सकते हैं।''* यह कहकर श्री शंकराचार्य जी को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा था न कि वे उनके पीछे चल पड़ीं। इसका विस्तृत वर्णन शांकर दिग्विजय में द्रष्टव्य है। अस्तु।

वैसे तो किसी भी कार्यक्रम के आरम्भ में मेरी प्रतिमा रखकर, मेरे आगे धूप-दीप जलाकर, **'माँ शारदे'** कहते हुए मेरी वन्दना करना आम बात है पर विशेष रूप से माघ शुक्ला पंचमी-वसन्त पंचमी के दिन मेरा पूजनोत्सव सम्पूर्ण भारत में बड़े धूम-धाम से समारोह पूर्वक मनाया जाता है। जहां तक वाग्देवी के रूप में मेरी मूर्ति बनाने का प्रश्न है ठीक है इनसे कई अर्थ निकाले जा सकते हैं जैसे-श्वेत वर्ण ज्ञान का शान्ति का प्रतीक है। हंस दूध पानी को पृथक् कर देता है, उसकी गर्दन लम्बी है, उसके पैरों में पानी का प्रभाव नहीं होता है इसलिये उसके समान ही हम भी नीर-क्षीर विवेकी बनें, उसकी लम्बी गर्दन के समान गहराई तक खोज करें, संसार सागर में रहते हुए भी उससे लिप्त न होकर अमरत्व की प्राप्ति करें। क्योंकि **'विद्यया अमृतमश्नुते'** कहा गया है। वीणा की झंकार के समान हमारी हृत्तन्त्री भी झंकृत हो जाये। कमल दल के समान, सहस्र दलों वाला मेरा सहस्रार चक्र आज्ञा चक्र सदैव पूर्ण विकसित हो, उस पर मेरा नियन्त्रण हो। मारवाड़ आदि में जहाँ हंस के स्थान पर मयूरवाहना मेरी मूर्ति बनायी जाती है उसका भी तात्पर्य है कि 'मयूर' नृत्य, कला, संगीत, विद्या, शक्ति एवं ज्ञान का प्रतीक है। मयूर के सम्मुख विषधर सर्प भी अन्धा हो जाता है जिसे मयूर भक्षण कर लेता है उसी प्रकार ज्ञान के सम्मुख अज्ञान का अन्त हो जाता है मानों अज्ञान को ज्ञान खा जाता है आदि व्याख्यायें की जा सकती हैं पर ये सब तो धारण करने की बाते हैं जिन पर विचार करना चाहिये।

वैदिक वाङ्मय में सरः शब्द, सरस्वती शब्द वाणी के अर्थ में खूब प्रयुक्त हुआ है, होता है। विदुषी स्त्री को भी सरस्वती कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण में तो स्पष्ट कहा है **'योषा वै सरस्वती'** (श.ब्रा. २।५।१।११) इस शब्द की व्युत्पत्ति भी यही बताती है कि- **'प्रशस्तं सरः विज्ञानं गमनं प्राप्तिर्वा यस्याः सा सरस्वती'** अर्थात् जिसका ज्ञान, गमन= आचरण और प्राप्ति प्रशंसित हो ऐसी सुसंस्कृत आचरण वाली विदुषी

जो भी देवी हो वह सरस्वती है। इस प्रकार तो घर-घर में जो भी विदुषी देवियां हैं- समाज में उनकी ही मान प्रतिष्ठा उनका ही पूजन सत्कार होना चाहिए। पर ये सब तो बहुत दूर की बाते हैं पहले तो यहाँ यही समझना है कि इतनी सुन्दर कलापूर्ण मेरी मूर्ति बनाकर भी उसका पूजन, स्वागत-सत्कार कर लेने के बाद उसका विसर्जन क्यों कर दिया जाता है? क्या यह स्वयं मेरा और मुझे बनाने वाले कलाकारों, मूर्तिकारों का अपमान नहीं है? **'बीना पानी की जय-बीना पानी की जय'** ठीक से बोलना भी नहीं आता वीणा पाणि को बीना पानी की जय बोल रहे हैं, हो-हो करते घूम रहे हैं। मुझे तो तरस आता है इनकी बुद्धि पर! लगता है इसके विसर्जन के साथ ही ये विद्या विवेक को भी विसर्जित कर देते हैं और पूरे साल बरेदी बने घूमते हैं। तभी तो मेरे देश की यह अधोगति हो रही है। न कोई आर्थिक विचार है, न कोई समय का विचार है। बस **'तू करे सो मैं करूँ मैं राजा का जप करूँ।'** एक दूसरे के पीछे चलते जा रहे हैं। क्या कहूँ?

सीता जी-

बहिन विद्याधरी जी ! श्रोतृवृन्द !

आज नौ लाख वर्ष के लगभग हो गये हैं पर आबाल वृद्ध नर-नारी आज भी मुझे भगवती सीता के रूप में बड़ी श्रद्धा से याद करते हैं। सबके हृदयों में मेरा आसन विराजमान है। किन्तु गपोड़े हांकने में लोग मेरे नाम पर भी नहीं चूके। लोक-विश्रुत जनक महाराज की मैं सुता हूँ एवं मेरी माता का नाम योगिनी है राजा जनक जी ने विवाह के समय पर स्वयं मेरे लिये कहा-

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव ।
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना'' ।। बालकाण्ड[१] ३२/१८

इसके अतिरिक्त उन्होंने-''**वीर्यशुल्केति मे कन्या नाम्ना सीतेति विश्रुता**''(२५।७) कहकर मुझे अपनी आत्मजा माना है। इससे पता चलता है कि मैं राजा जनक की सुता हूँ किन्तु पाखण्डी लोगों ने मेरे कुल गौरव को नष्ट ही कर दिया और बताया कि मेरा जन्म धरती से फटकर हुआ। धरती से जैसे कीड़े मकोड़े, घास-फूस, केंचुआ आदि उत्पन्न होते हैं वैसे ही मैं राजा जनक के खेत जोतते-२ फाल में से ही धरती से फूटकर निकल पड़ी क्योंकि मेरा नाम सीता है और सीता हल के फाल को भी कहते हैं अतएव ऐसी मनगढ़न्त कहानी लोगों ने मेरे साथ जोड़ दी। यह नहीं सोचा कि एक शब्द के तो अनेकों अर्थ होते हैं- '**स्यति कर्मसमाप्तिं करोतीति सीता**' अर्थात् जो प्रत्येक कार्य को बड़े धैर्यपूर्वक अन्त तक समाप्त करे यह इसका अर्थ है। प्रत्येक कार्य को धैर्यपूर्वक

---

१. सर्वत्र गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली संस्करण की ही सन्दर्भ संख्या दी है ।

समाप्त करने की मेरी प्रवृत्ति को देखकर या मुझसे अपेक्षायें कर बाल्यकाल में ही मेरे पिताजी ने मेरा नाम सीता रख दिया तो इसमें गपोड़ा गढ़ने की क्या जरूरत थी? कुछ तो बुद्धि से काम लेना चाहिए।

(दरबारी बहिनें - बुद्धि है ही नहीं तो क्या करें?)

मेरे विषय में लोगों ने और भी अन्ध-विश्वास फैलाये परन्तु मैं उनकी चर्चा न कर सबसे बड़ी बात आपके सामने निवेदन कर रही हूँ कि रामलीला अथवा मंदिरों में छोटे छोटे राम सीता बनाकर मेरी नकल उतारी जाती है इससे मेरा मन बड़ा दुखता है। मेरे नाम पर आरती उतरवाकर पांच-पांच दस-दस पैसे की भीख मंगवाई जाती है और वे पैसे पण्डे पुजारी चट कर जाते हैं *(बीच में व्यंगात्मक हंसी)*। क्या मैं राजा जनक की पुत्री और यशस्वी राजा दशरथ की कुलवधू होकर भिखारिन की पात्र बन गई? "सियावर रामचन्द्र की जय" की टेर लगवाकर मेरे साथ यह अनर्थ किया जाता है। मेरा यह अपमान सर्वथा दुःसह है। भगवान् करे इन भोले भक्तों को अक्ल आ जाये और ये मेरे गुणों की यथार्थ पूजा करने लगें।

(तालियों की गड़गड़ाहट)

राधा देवी जी-

परमश्रद्धेया माता जी ! उपस्थित भाइयो एवं बहिनों!

अपनी दुर्दशा के स्मरण मात्र से मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। बताते हुए लज्जा से एक-एक रोम अन्दर को धंसता जा रहा है। वाणी कम्पायमान हो रही है तथापि असत्य का पर्दा आपके सामने से सर्वथा दूर होना चाहिए इस उद्देश्य से अपनी अत्यन्त संक्षिप्त गाथा आपके सामने रखूँगी।

विवाह के उपरान्त १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक घोर तप करने वाले महापराक्रमी योगिराज श्रीकृष्ण के साथ लोक-विश्रुता राधा का जो रिश्ते में उनकी मामी लगती थी अनुचित सम्बन्ध इन प्रेममार्गी वैष्णव भक्तों ने न जाने कब और कैसे जोड़कर रख दिया। आज स्थान-स्थान पर राधा और श्रीकृष्ण के नाम पर रासलीलायें देखने को मिलती हैं। सर्वत्र राधेश्याम-राधेश्याम की ही रट सुनाई पड़ती है। गोकुल और व्रजमंडल तो बस क्या कहूँ दिन रात चौबीसों घंटे रासलीलाओं के केन्द्र बने रहते हैं। कृष्णाष्टमी और होली जैसे पवित्र पर्वों में यहां की दशा देखने योग्य है। किन्तु बेचारी रुक्मिणी जो उनकी वास्तविक धर्मपत्नी थी जिसके साथ श्रीकृष्ण जी ने पाणिग्रहण संस्कार में प्रतिज्ञा के ६ मन्त्र पढ़े थे एवं यज्ञवेदी पर सप्तपदी के सात कदम चले थे, उसका नाम भी सुनने को नहीं मिलता।

हे नरकाधमो! रुक्मिणी के साथ आखिर इतनी उपेक्षा क्यों ? इसलिए कि वह सती साध्वी सात्विक जीवन का उपभोग करने वाली पतिव्रता नारी थी। उसे इस रूप में वर्णन करके आपका उल्लू सीधा नहीं हो सकता था। क्या कहूँ इन चरित्रहीन स्वार्थियों को।

सबसे आश्चर्य तो मुझे इस बात का है कि मेरे सम्बन्ध में इस प्रकार के मनगढन्त प्रलाप का उल्लेख न तो महाभारत में मिलता है और

न ही अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों में यहां तक कि जिसमें रासलीलाओं की भरमार है ऐसे भागवतपुराण और अन्य १६ पुराणों में भी मेरा नाम तक नहीं किन्तु एक ब्रह्मवैवर्त पुराण ही ऐसा है जिसमें इस प्रकार की गप्पें मिलती हैं और देखिये इसी पुराण के प्रकृति-खण्ड में-

वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह।
सार्धं रायाणवैश्येन तत्सम्बन्धं चकार सः।।
कृष्णमातुर्यशोदाया रायाणस्तत्सहोदरः।
गोलोके गोपकृष्णांशः सम्बन्धात् कृष्णमातुलः।।

(ब्रह्म वै. पु. श्रीकृष्ण जन्म खण्ड २/४९)

(दरबारी एक बहिन -अत्युत्तम प्रमाण है)

अर्थात् राधा वृषभानु वैश्य की कन्या थी। उसने उसका सम्बन्ध रायाण वैश्य से कर दिया। रायाण श्रीकृष्ण की माता यशोदा का माँ जाया भाई था। अतः निःसन्देह राधा कृष्ण की मामी हुयी किन्तु राधा के साथ किया गया अत्याचार सीमा को एकदम पार कर गया है। इसका न्याय इस सभा में अवश्य होना चाहिये। भक्तमार्गियों ने भी इसके सम्बन्ध में अति की है। कहा गया है-

राशब्दोच्चारणाद् भक्तो याति मुक्तिं सुदुर्लभाम् ।
धाशब्दोच्चारणात् दुर्गे धावत्येव हरिं पदम् ।।

ऐसी-ऐसी गप्पें हांककर मेरे साथ वस्तुतः कितना उपहास किया गया है। मेरे पास इन दुःखद गाथाओं के लिए शब्द नहीं हैं। मेरा ध्येय गड़े मुर्दे उखाड़ना नहीं प्रत्युत सत्यता को उद्घाटित करना है। तदर्थ संकोच होते हुए भी मैंने आपके समक्ष अपने थोड़े से विचार रखे। अन्त में प्रभु से यही प्रार्थना करते हुए कि धार्मिकता की आड़ में आज जो इस देश में कुकृत्य हो रहे हैं वे शीघ्र दूर हों, मैं यहीं पर विराम लेती हूँ।

(तालियों की गड़गड़ाहट)

हनुमान् जी-

हे न्यायकारिणि विदुषि देवि ! तथा उपस्थित सज्जनों !

मेरे प्रति जो अन्याय किया गया उसकी भी गाथा क्या कोई कम दयनीय है? जनसाधारण ने मेरे लिए रामायण में आये हुए 'वानर' शब्द को देखकर मुझे भी पूँछ और विचित्र मुँह वाला बन्दर बनाकर रख दिया। इससे अधिक मेरा अपमान और अन्याय भला क्या हो सकता है कि जिस मुझको राम ने यह कहा-

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम् ।।
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ।।

(किष्किन्धा कां० २/२८-२९)

अर्थात् हनुमान् निश्चित ही चार वेदों के ज्ञाता एवं निखिल व्याकरण शास्त्र के वेत्ता हैं तभी तो इतनी ऊँची बातें कह रहे हैं। उस मुझ विद्वान् को एक साधारण अपठित मनुष्य से भी नीचे पशु की तुलना में लाकर खड़ा कर दिया। गोस्वामी तुलसीकृत रामायण में मेरे लिए यह कहा गया है- **"विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ"**। क्या कभी तिलक लगाकर कंधे में उत्तरीय डालकर एवं हाथ में वेद की पुस्तक लिए बन्दर भी ब्राह्मण बन सकता है? *(नहीं ! कभी नहीं)* क्या बन्दर भी कभी लंका स्थित सीता को खोज सकता है? एवं बाद में सीता के मिलने पर "मैं संस्कृत और प्राकृत इन दोनों भाषाओं में किस भाषा के माध्यम से सीता के साथ व्यवहार करूँ" इत्यादि तर्क वितर्क की बातें सोच सकता है? तद्यथा रामायण में -

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ।।

(सुन्दर कां० १९/८)

(दरबारी व्यक्तियों बहुत ही अच्छा प्रभाव है)

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि मैं एक विद्वान् मनुष्य था न कि बन्दर! पर क्या कहूँ ? मेरी तो समझ में नहीं आता मैंने कौन सा अपराध किया जिसका बदला लेने के लिये मेरे साथ इतना अपमानजनक दुर्व्यवहार किया जा रहा है।

देखिये! वानर शब्द तो एक विशेष जाति का नाम है। इसका यौगिक अर्थ इस प्रकार है- **'वा+नरः विकल्पेन नरः'** अर्थात् अन्य नरों की भांति नगरों में निवास न कर जो पर्वतों की गुफाओं में रहते हैं उन्हें वानर कहते हैं। अथवा **'वानं वनसंबन्धि फलादिकं राति'** अर्थात् वन्य पदार्थों से ही अपना निर्वाह करने वाली जाति वानर कहलाती है। अभी कुछ समय पूर्व रूस और जापानियों की अधिक कूद फांद और उनका पीला वर्ण देख उन्हें पीले बन्दर की संज्ञा दे दी गयी थी और रूसी पुरुषों को रूसी रीछ कहा गया था। अंग्रेजों को बहुधा ब्रिटिश सिंह एवं जॉन वैल कहा जाता है। कई क्षत्रिय नागवंशी कहलाते हैं तो क्या ये सचमुच तत्-तत् नाम वाले पशु हुए? इनके नाम तो गुणों के अनुसार वैसे ही रखे गये। *(सबका स्वीकारात्मक सिर हिलाना)* उसी प्रकार हममें विशेष स्फूर्ति आदि बन्दरों के गुण देखकर हमें भी वानर कहा गया है। पर हमारी जो किष्किन्धा नगरी उस समय की समृद्धिशालिनी नगरी थी उसके निवासी बन्दर हों यह तो कभी सम्भव ही नहीं।

आम जनता ने मेरे सम्बन्ध में एक और गलत धारणा बनाकर मेरे तैराकी के कुशलतादि नैसर्गिक गुणों पर कुठाराघात कर दिया है। कहा जाता है- 'पवनसुत हनुमान्' यानि मैं जड़-वस्तु पवन का पुत्र हूँ अतः मुझमें उड़ने की शक्ति है। क्या कहूँ लोगों की बुद्धि को 'जय हो' जरा इतना तो विचार कर लिया होता कि यदि प्लाई शब्द मुख्यतः उड़ने अर्थ में है तो कहीं-कहीं शीघ्र चलने अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग होता है। उसी प्रकार समुद्र की लहरों में मेरे अत्यधिक वेग से तैरने को ही उड़ने की उपमा दे दी तो आपने क्यों अपनी बुद्धि को ताक में रखकर अर्थ का

अनर्थ कर दिया। बन्दर कितना भी परिश्रमी एवं समझदार क्यों न हो किन्तु उसमें ऐसे गुणों का पाया जाना तीन काल में भी सम्भव नहीं।

हे देवि ! कहाँ तक अपनी दुर्दशा का वर्णन करूँ। आप मेरे इन संक्षिप्त एवं अस्पष्ट भावों से ही मेरी सारी दुरवस्था का अनुमान कर मेरे साथ न्याय करने की कृपा करेंगी ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

●

जब सच्चा उपदेश न रहा, तब आर्यावर्त्त में अविद्या फ़ैलकर आपस में लड़ने-झगड़ने लगे।

क्योंकि-

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः ।

इतरथा अन्धपरम्परा । सांख्य द० ३।७९।८१

अर्थात् जब उत्तम-उत्तम उपदेशक होते हैं, तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं। और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते, तब अन्ध-परम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं, तभी अन्ध-परम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है।

महर्षि दयानन्द

सत्यार्थ प्रकाश, एकादशसमुल्लास

सन्तोषी देवी जी-

(हिन्दुओं का अस्तित्व आज अत्यन्त खतरे में है पर इन्हें खबर भी नहीं। प्रस्तुतं 'सन्तोषी माता' का व्रत 'सन्तोखा' नाम की लड़की के नाम पर मुसलमान द्वारा चलाया गया है। अरबं देश में इस कन्या का जन्म मौ. कबुलद्दीन पठान के घर हुआ। इसने बम्बई में आकर रमज़ान का त्यौहार अत्यन्त धूमधाम से मनाया तथा फिल्म डायरेक्टरों को प्रभावित करके अपने नाम की फिल्म ही नहीं चलाई अपितु शुक्रवार जिस दिन मुसलमान रोजा का व्रत रखते हैं उसी दिन हिन्दुओं द्वारा व्रत करवाकर एवं जैसे वे चने गुड़ रोजे के दिन बांटते हैं वैसे ही इस व्रत में चने गुड़ बंटवाकर अप्रत्यक्ष रूप से मुसलमानी पूजा को ही हिन्दुओं द्वारा चलवा दिया। यदि हिन्दू ऐसी ही पूजाओं को जिसमें हमें विधर्मी बनाने की गुप्त चाल है, भेड़चाल बनकर अपनाता रहा तो सर्वनाश समीप है। प्रस्तुत वक्तव्य में कुछ कलई 'सन्तोषी व्रत' की खोली गई है। संकलयित्री)

हे परमपूज्या विद्याधरी देवी! एवं सज्जनों !

मैं आज एक काल्पनिक देवी जिसकी रूप और आकृति तीन काल में बन ही नहीं सकती उसका प्रतिनिधित्व करते हुए बोल रही हूँ। अतः मेरे उत्तम पुरुष के प्रयोगों को देखकर चौंकियेगा नहीं, तो सुनिये ! मेरा नाम है **सन्तोषी माता**। मेरी तो बुरी हालत है। वेद ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् पुराणादि कहीं पर मेरे नाम का उल्लेख नहीं परन्तु 'आंख के अन्धे गांठ के पूरे' व्यक्तियों ने काल्पनिक प्रतिमा बनाकर धन ऐंठने का साधन मुझे बना दिया है। आश्चर्य तो यह है कि मेरी आकृति तो स्त्री की बना दी जो दुर्गा से मिलती जुलती है पर नाम पुरुष का दे दिया। इन

अविवेकियों को अक्ल कहां से आती कि - **सन्तोषोऽस्यास्तीति सन्तोषी** स्त्रीलिंग में इस प्रकार का नाम ही गलत है। *(व्यंगात्मक हँसी)* स्त्रीलिंग में **संतोषिणी** होना चाहिए था पर हस्ती और दधि को स्त्रीलिंग बताने वाले अज्ञानियों को यह कैसे पता चल सकता है कि यह स्त्रीलिंग नहीं है।

इतना ही नहीं प्रत्युत मेरे नाम की फिल्म चलवाकर लोगों को अज्ञान के गर्त्त में ढकेला जा रहा है। मेरे नाम का शुक्रवार का व्रत भी एक अद्भुत महिमा धारण किये हुये है। इस व्रत में खटाई न खाना एक बहाना मात्र है। वस्तुत: व्रत का नाम लेकर ये मातायें बहिनें दुगुना तिगुना माल-मसाले का आस्वादन कर लेती हैं जैसे कि इस सम्बन्ध में एक बुढ़िया माता की कहानी प्रसिद्ध है कि उसने मेरे नाम का व्रत रखा तो उसके क्रमश: चारों पुत्रों में से किसी ने पकौड़े किसी ने दूध किसी ने रबड़ी आदि भिजवाया और शाम होते-२ वे सभी पदार्थ बुढ़िया चट कर गई।

*(दरबारी एक नन्हीं बहिन-**वाह रे ! बुढ़िया,** सबका हँसना)* यह देख उसके बच्चे चिल्लाकर कहने लगे- अरे ओ लोगो ! अरे ओ पड़ोसियो ! अपने-२ बच्चों को संभालो। आज मेरी मां ने सन्तोषी माता का व्रत रखा है । वह सब कुछ खाये जाती है। भला विचार करिये ? यह क्या व्रत उपवास है जिसमें चौगुने से भी अधिक माल चबाया गया।

बहिनों एवं भाइयो ! जीवन में सन्तोष धारण करना ही सन्तोषी (पुरुष) या सन्तोषिणी (स्त्री) बनना है जब तक मनुष्य के अन्दर इच्छायें या कामनायें बनी रहेंगी तब तक उसका जीवन सन्तोषमय नहीं बन सकता। **'सन्तोषः परमं सुखम्'** अर्थात् सन्तोष ही परम सुख है। सन्तोष के बिना सुख की कामना दुराशा मात्र है। पातंजल योगदर्शन में कहा है कि-**सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः** (योग २/४२) अर्थात् संसार में सन्तोषी व्यक्ति को ही अनुत्तम = जिससे अन्य कोई उत्तम न हो अर्थात् सर्वोत्तम सुख प्राप्त होता है।

अष्टांग मार्ग के प्रसंग में शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर -

प्रणिधान इन पाँच नियमों के अन्तर्गत सन्तोष को दूसरा स्थान प्राप्त है। इससे पता चलता है कि सन्तोष जीवन का सबसे आवश्यक अंग है। आज सर्वत्र मानव शान्ति की खोज में मृग-मरीचिका की भाँति इतस्ततः घूम रहा है। शान्ति तब तक सम्भव नहीं जब तक जीवन सन्तोष के जल से आप्लावित न हो जाय।

अतः मान्य पुरुषो ! प्रकाश से डरकर भागने वाले उल्लू की भाँति ज्ञान से भागकर अज्ञान में सिर छिपाने का यत्न करना सर्वथा अनुचित है। प्रतिक्षण जीवनरूपी घट को सन्तोष के जल से भर दो। फिर देखो कितनी शीतलता, कितना सुख, कितना आनन्द, कितनी शान्ति है। पर इसे न समझकर स्वार्थी लोग अशरीरी तत्वों की भी आकृति बनाकर दुनिया को ठगने लगे, सो आप भगवती देवी इस विषय का भी न्याय करें, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

(तालियों की गड़गड़ाहट)

o

गायत्री माता-

[पार्श्व से- ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

देवियो! भाइयो!

यहाँ गायत्री तपोभूमि मथुरा में गायत्री माता का मंदिर है। यहाँ गायत्री मन्त्र की साधना होती है। इस साधना के द्वारा लोग ऋषि, तपस्वी बन जाते हैं। उनके जीवन का काया कल्प हो जाता है। यह गायत्री तपोभूमि गायत्री का सिद्धपीठ है। यहाँ अखण्ड एवं ४०० तीर्थों के जल-रज की स्थापना है। यहाँ हम गायत्री अनुष्ठान कराते हैं यज्ञोपवीत भी धारण कराते हैं। यज्ञोपवीत गायत्री की मूर्तिमान् प्रतिमा है। इसके नौ धागे गायत्री मन्त्र के नौ शब्दों के प्रतीक हैं। इसे ऋषियों ने रिसर्च करके बनाया है। गायत्री को वेदमाता कहा गया है। चारों वेद गायत्री माता के पुत्र हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि ब्रह्मा जी ने अपने एक-एक मुख से गायत्री के एक-एक चरण की व्याख्याएं की हैं। इस प्रकार चार मुखों से चार वेदों का वर्णन किया है। तद्यथा-

'ओं भूर्भुवः स्वः' से ऋग्वेद, 'तत्सवितुर्वरेण्यं' से यजुर्वेद, 'भर्गो देवस्य धीमहि' से सामवेद और अन्तिम चरण 'धियो यो नः प्रचोदयात्' से अथर्व वेद। जिस प्रकार मनुष्य के एक बूँद भ्रूण कलल में मनुष्य का पूरा-पूरा स्वरूप होता है उसी प्रकार गायत्री मन्त्र के २४ अक्षरों में समस्त संसार का ज्ञान-विज्ञान भरा पड़ा है। इसमें सोना बनाने का भी विधान भरा पड़ा है।]

अरे! ये किसका प्रवचन आप सब सुन रहे हैं,ओह! आप देवी-देवताओं को शायद पता नहीं नाम पुराना है किन्तु विज्ञापन नया। ये आवाज थी-मुझे विज्ञापित करने वाले, नहीं-नहीं विज्ञापित ही क्यों? मुझे हंसवाहना, कमलासना, एकमुखी, पुस्तक-कमण्डल धारिणी, मानवी स्त्री के रूप में जन्मदाता, आधुनिक युग के ब्रह्मर्षि, वेद मूर्ति, अपने आप को २४ कलाओं से युक्त, पूर्ण अवतार, कालनिरञ्जन, महाकाल, कल्कि अवतार,

दशम अवतार आदि नामों उपाधियों से प्रचारित कराने वाले श्री-श्री
१०८ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी की। यद्यपि उनकी जन्म-मृत्यु दोनों ही इस समय हो चुकी है पर मेरे जन्म को अभी ५० वर्ष भी पूर्ण नहीं हुए हैं, पूरे ५० होने में अभी लगभग ३ साल शेष हैं। पर इतने अल्प समय में ही मेरे नाम की सभी प्रतिष्ठित साहित्यिक विधायें संहिता से लेकर पुराण तक आज के सभी बुक स्टालों में आपकी कृपा से उपलब्ध हैं। जैसे- गायत्री संहिता, गायत्री गीता, गायत्री उपनिषद्, गायत्री रामायण, गायत्री महाभारत, गायत्री, ओह! नहीं-नहीं मैं भूल गई ऐसे ही झोंक में बोल गई वस्तुतः दुःख तो इसी बात का है कि मेरे नाम का अभी तक कोई महाभारत नहीं बना। हो सकता है निर्माणाधीन हो, या बन चुका हो, नहीं तो फिल्म वाले या अन्य लोग भी इस कमी को पूरा कर सकते हैं।

हाँ! तो नामों की सूची तो अभी आरम्भ ही हुई थी आगे सुनिये- गायत्री लहरी, गायत्री मंजरी, गायत्री चालीसा, गायत्री अष्टकम्, गायत्री सहस्रनाम,गायत्री आरती, गायत्री (बीच में ही पीछे मुड़कर देखते हुए) अरे ये क्या आप सब ऊँघने लगे! अच्छा तो चलिये छोड़िये मैं अब नामावली यहीं समाप्त करती हूँ। हाँ! तो आगे सुनिये-देवी भागवत पुराण में मेरे अंग-प्रत्यंगों का, वाहनों-आयुधों का,सांगोपांग पूजाविधि का विस्तृत वर्णन भी आजकल प्राप्त होने लगा है। यहाँ त्रिकाल सन्ध्या होती है जबकि सन्धि वेला दो ही होती है और उस त्रिकाल सन्ध्या के लिये मेरी आकृति भी भिन्न-भिन्न बताई है। प्रातः हंसवाहना, मध्याह्न गरुड़वाहना, तो सायं वृषभवाहना क्रमशः ब्रह्मा विष्णु महेश के रूप में मेरी पूजा करना युक्त है। आदि बातों का विस्तृत उल्लेख आप 'पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय' जो पाँच-पाँच सौ पृष्ठों के ७० खण्डों में उपलब्ध है,में देख सकते हैं।

गायत्री अनुष्ठान के समय मेरी मूर्ति के साथ २ मेरे जन्मदाता अर्थात् मेरे माता-पिता ही कहिये - आचार्य श्रीराम शर्मा व उनकी पत्नी पहले सरस्वती बाद में भगवती देवी के नाम से प्रचारित माता जी का चित्र भी

रखना आवश्यक होता है। जिसका कोई औचित्य मेरी समझ में नहीं आता। कहीं गायत्री पूजा के माध्यम से अपनी पूजा करवाना तो इनका उद्देश्य नहीं। क्योंकि स्वयं को प्रज्ञावतार घोषित करना, और सैकड़ों की संख्या में प्रज्ञा कलश लेकर चलने वाले स्त्री-पुरुषों का जुलूस निकालना और अपने नाम से प्रज्ञापुराण की रचना करना आदि कार्य किस बात के द्योतक हैं?अस्तु ।

गायत्री एक मन्त्र है जो कि गायत्री छन्द में आबद्ध होने से गायत्री कही जाती है। क्या कभी शब्दों की भी मूर्ति बनती है। (कोई दरबारी बहिन-शायद आपको पता नहीं यहाँ चारों वेदों की भी गाय-घोड़ा-गधा आदि के रूप में मूर्ति प्रतिष्ठित है। यह तो आपकी गनीमत है) ठीक कह रहे हैं इसमें आश्चर्य या दुःख करने जैसी कोई बात नहीं है। वस्तुतः यह पत्थर युग है रोबोट और कम्प्यूटर युग है जहाँ आत्मा-मन-हृदय-विचार इनके लिये स्थान नहीं है। चारों वेद गायत्री माता के पुत्र हैं। यज्ञोपवीत गायत्री की मूर्तिमान् प्रतिमा है। आदि बातें कहना कितनी हास्यास्पद हैं। अपने सम्पूर्ण शास्त्रों का ऋषि महर्षियों का यह कितना बड़ा अपमान है क्योंकि चारों वेद,ब्राह्मण,उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत आदि सभी यही तो कहते हैं कि वेद और उसके अन्तर्गत गायत्री मन्त्र भी स्वयं परमेश्वर का दिया हुआ ज्ञान है। पर शास्त्रों से कभी भेंट हुई हो इनकी तब न! ये तो स्वयंभू हैं। और दूसरी बात-यदि यज्ञोपवीत गायत्री की मूर्त्तिमान् प्रतिमा है तो आप यज्ञोपवीत ही सबको दिया करो, जिसे प्राचीन काल से सभी स्त्री-पुरुष धारण करते आये हैं फिर वेद विरुद्ध गायत्री की मूर्त्ति स्थापना क्यों कराते फिरते हो? सुनते हैं कभी मथुरा आर्यसमाज के ये प्रधान थे पर इनकी महत्वाकांक्षाओं ने इन्हें वहाँ टिकने नहीं दिया औंर वहाँ से निकल कर ये वेदमूर्त्ति बन गये। कहते हैं न ! 'हम भी बन्दर तुम भी बन्दर, दुनियाँ बन्दर है देखो!' इसी तरह इन पूजकों को भी बस 'मैं भी मूर्त्ति तू भी मूर्त्ति (मैं भी पत्थर तू भी पत्थर) दुनियां मूर्त्ति है देखो!' यही दिखाई देता है। क्या अधिक कहूँ ?

वैष्णो देवी जी

[नोट-यह बहिन रोती एवं सिसकती हुई अपनी व्यथा सुनाने आती है।]

कृपया इस जन पर भी कुछ न्यायकण बिखेरकर अपनी न्याय - प्रियता का परिचय दें।

मुझे जन सामान्य ने वैष्णो-देवी के नाम से विभूषित किया है। मैं आपसे बड़े दुख भरे शब्दों में निवेदन कर रही हूँ कि जम्मू से ७० किलोमीटर की दूरी पर ५२० फिट ऊँचे पर्वत पर मेरे नाम का एक विशाल मन्दिर बनाया गया है। जहां के पण्डे पुजारियों का एक मात्र लक्ष्य धनिकों से अधिकाधिक धन हड़पकर अपना पेट मोटा करना है। आज वहां जाकर देखिये लाखों करोड़ों की संख्या में लोग प्रतिदन दूर २ से मीलों की यात्रा तय करते हुए आते हैं। उन्हें पर्वतों की कठिन चढ़ाई करनी पड़ती है। मार्ग में अत्यन्त संकरी गुफाओं से होकर जाना पड़ता है। 'जय माता दी' की ही रट लगाने वाली उनकी वाणी भी कहां विश्राम ले पाती है। अन्त में मिलता क्या है भोले भक्तों को, बस ! एक साधारण पत्थर की बटिया के दर्शन। इतना ही नहीं भोगी विलासी फिल्म अभिनेता, अभिनेत्रियाँ समस्त नेता गण यहां तक कि हमारी भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी जी भी जब हर वर्ष वहां जाने में अपनी दिलचस्पी दिखाती थीं तो दुखड़ा किस पर रोया जाये। *[इन्हें आश्वस्त करने के लिये एक बहिन बीच में ही उठकर जल देती है और माता विद्याधरी जी भी आश्वासन देती हैं]।*

उस मेरे मन्दिर के पास एक मोक्ष गुफा है। जिसके लिए कहा जाता है "जो इसको पारकर वहां पहुँचेगा वह मोक्षभागी बनेगा" सभी पहले उसें पार करते हैं तत्पश्चात् आगे बढ़ते हैं। इस मन्दिर को बने हुए ५००० वर्ष के लगभग हो गये तब से न जाने कितने असंख्य नर-नारी

इस मोक्ष गुफा को पार कर चुके होंगे। यदि वास्तव में उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हो गई होती तो आज भारत की जनसंख्या घटकर समाप्त-प्राय हो जाती।

एक और बात मेरे दुःख की सुनिये- मेरे मन्दिर में धन लोलुपता इतनी हद तक बढ़ी हुई है कि अधिक चढ़ावा चढ़ाने वाले भक्त को देर तक दर्शन कराये जाते हैं और कम चढ़ावा चढ़ाने वाले दरिद्र को बस पल भर के लिए। भले ही वह क्यों न कितने कष्ट उठाकर आया हो। ये अक्ल की अन्धी जनता इतना ही नहीं रात रात जागकर **"जोर से बोलो जय माता दी" "उच्चे बोलो जय माता दी" "मैं नहीं सुणया जय माता दी"** आदि नारे लगाकर अपनी जबान थकाते हैं। लगता है मेरे भक्त बहरे हो गये हैं जो उन्हें पास बैठे हुए सुनाई नहीं पड़ता **"मैं नहीं सुणया जय माता दी"**।

एक और बात मेरे समझ में नहीं आती कि सर्वशक्तिमान् का अर्थ तो यह है जो बिना साधनों के ही सब कुछ कर सके। सर्वशक्तिमान् तो परमेश्वर के बिना कोई हो ही नहीं सकता। इस भोली जनता ने एक तरफ तो मेरे साधन रूप दो नहीं बल्कि आठ हाथ और मेरी सवारी शेर बना दी है। यदि मुझे साधनों की ही आवश्यकता है तो मैं सर्वशक्तिमती कैसे हुई? मैं तो किसी की वर कामना याचना को भी पूरा नहीं कर सकती फिर तो मेरी पूजा करनी ही व्यर्थ है। यह तो है मेरी दुर्दशा की करुण गाथा। मैं अपनी ही क्या कहूँ? औरों की दशा भी तो कम दयनीय नहीं है। ठीक मेरी ही जैसी दुर्दशा 'मिट्टी के माधो' बने हुए लोगों ने **नाँगला देवी** की भी बना डाली है। इस समय पंजाब के पण्डों ने उसके नाम का एक विशाल मन्दिर भी बना दिया है। जिसका ध्येय भी इन्हीं पण्डों द्वारा अमीरों से अधिकाधिक धन माल बटोरना ही है। बस क्या अधिक कहूँ, मेरी वाणी में इतना सामर्थ्य नहीं है कि वह अपनी गाथा का विस्तार से वर्णन कर सके। अस्तु! न्याय की आशा करती हुई अपनी गाथा का अन्त करती हूँ।

सखि-सम्प्रदाय

(इन बहिन का नाटकीय ढंग से पुलिस सलामी देते हुए प्रवेश)

उफ! अब तो बहुत सुन चुकी। भई, सम्प्रदायों और भगवानों के तो ढेर लगे हुए हैं। यहाँ 'रजनीश'[1] और 'हंसा जी' जैसे लोग भगवान् बने घूमते रहे हैं। इस समय एक माता 'सचस्वरूपा जसजीत कौर' अपने को नारी रुप में ईश्वर का अवतार उद्घोषित कर रही हैं। क्या कहने इनके! इसके पहले एक 'सखि सम्प्रंदाय' भी चला था। जिसके अनुयायी भगवान् राम की सखी अपने आपको बताते थे। अर्थात् सभी राम भक्त पुरुष, स्त्री बनने का ढोंग रचते थे और कहते थे कि यही उपाय ईश्वर की प्राप्ति का है। लानत है!! पुरुष जन्म पाकर भी स्त्री बनते रहे, क्या अधिक कहूँ? अब आप ही लोग सोचिये समझिये।

[सभी दरबारी बहिनें- छि:. छि: लानत है इन कुकर्मों को]

---

१. तब ये वाममार्गी 'रजनीश भगवान्' भारत छोड़ अमरीका भाग गये थे। और वहाँ अपनी करतूतों का प्रसार करने में लगे रहे और अब तो दुनियां से ही बिदा हो लिये।

त्रयस्त्रिंशत् कोटि देव

मान्या विद्याधरी जी ! एवं उपस्थित श्रोतृवृन्द !

हम थोड़ी बहिनें ही यहां प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हैं पर बातें तो और भी बहुत कहने की हैं। लोगों ने तो अपनी नासमझी के कारण "**त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवाः**" इस शब्द में कोटि का वास्तविक अर्थ न समझकर करोड़ लगा लिया और ३३ करोड़ देवताओं की कल्पना भी कर ली, तो और क्या कहें? जिस हिन्दू कहाने वाली जाति के ३३ करोड़ देवता! यानि इतनी बढ़ी हुई आबादी में भी भारत में आधी से अधिक जनसंख्या के बराबर देवता ही देवता हों वहां का रोना हम थोड़े से लोग क्या रोयेंगे? जम्मू में एक आंख के अन्धे गांठं के पूरे किसी सेठ ने तैंतीस करोड़ देवताओं का मन्दिर भी बना दिया है। ३३ करोड़ की संख्या में ये देवता गुलगुले से बैठाये आप जम्मू के रघुनाथ मंदिर में आज भी देख सकते हैं। जहाँ मात्र सड़ाँध और उल्लू व कबूतरों के निवास के कुछ नहीं है।

अब देखिये! किसी ने किसी से कहा कि '३३ कोटि देव हैं' तो कोटि शब्द के दो अर्थ होते हैं कोटि अर्थात् करोड़ दूसरा कोटि अर्थात् प्रकार। ३३ कोटि देव हैं कहने का तात्पर्य हुआ ३३ प्रकार के देव हैं पर उस मूर्ख ने समझा ३३ करोड़ देव हैं, और बस अन्ध परम्परा चला दी।

शतपथ ब्राह्मण में विदग्ध शाकल्य याज्ञवल्क्य से पूछते हैं कि **कत्येव[१] देवाः याज्ञवल्क्येति** ? वे उत्तर देते हैं-"**त्रयस्त्रिंशदिति**" पुनः शाकल्य जी पूछते हैं- "**कतमे त्रयस्त्रिंशदिति**" अर्थात् वे ३३ देवता कौन कौन से हैं? याज्ञवल्क्य जी उत्तर देते हुए कहते हैं- **अष्टौ वसवः एकादश रुद्राः द्वादश आदित्याः ते एकत्रिंशदिति** अर्थात् ८ वसु ११

---

१. श. ब्रा. १४।६।९।१-३।

रुद्र १२ आदित्य ये कुल मिलाकर ३१ तथा इन्द्र और प्रजापति मिलाकर ३३ देवता हैं। इसी प्रकार महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में ३३ देवों की संख्या गिनाई है। यजुर्वेद में भी इसी प्रकार ३३ देव कहे हैं-

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः

बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरवन्तु मा।

यजु. २०।११॥

इस प्रकार ८ वसु अर्थात् बसाने वाले पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और ११ रुद्र अर्थात् रुलाने वाले प्राण, अपान,व्यान,उदान,समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय एवं जीवात्मा तथा १२ आदित्य यानी बारह महीने ये इकत्तीस हुए। अब बत्तीसवां देवता इंन्द्र अर्थात् बिजुली हुआ। तैंतीसवाँ प्रजापति अर्थात् प्रजापालक यज्ञ हुआ । ३४वां देवों का देव महादेव परमात्मा है। इस प्रकार देव ३३ हुए न कि तैंतीस करोड़ । भाइयो! ३३ देवताओं की यथार्थता इस प्रकार मैंने आपके सामने रखी अब मैं न्याय की बागडोर समादरणीया माता विद्याधरी जी को सौंपते हुए अपना स्थान ग्रहण करती हूँ।

गणेश जी-

[नाटकीय ढंग से आकर]

माननीय विद्वद्वर ! समादरणीया सभानेत्री देवी जी!

मैं इस समय गणेश जी जिनका चित्र प्राय: सभी वणिजों की दुकानों में दिखाई देता है का प्रतिनिधित्व कर रही हूँ। यानि उनकी दुर्दशा का वर्णन मैं अपने मुख से गणेश के रूप में करूँगी क्योंकि वे बेचारे कहाँ बोलने आयेंगे। वैसे आप भूल में मत रहियेगा मेरा वास्तविक नाम **''सम्प्रति''** है।

(अन्य बहिनें अच्छा तो आप.'सम्प्रति' हैं) हां तो सुनिये! इन मूढ़ मतियों ने मेरा स्थूलकाय शरीर तथा मुंख हाथी का बना दिया। पेट तो इतना बड़ा बना दिया है कि जैसे लड्डुओं का भरा थैला हो। इतना भारी भरकम शरीर बनाने पर भी मेरी सवारी चूहा रखी। भला बताइये! कम से कम १ क्विन्टल वजन वाला मैं गणेश, यदि उस चूहे पर चढ़ूँ तो उसकी चटनी नहीं बन जायेगी *(सबका हंसना। बीच में ही एक बहिन-जरूर बन जायेगी)* पर! वाह रे लोगो! अन्धेर है।

पुराणों[१] में मेरी उत्पत्ति पार्वती माता के मैल से बतलाई गई है। कहा गया है-कि पार्वती माता एक बार स्नान करने स्नानागार में प्रविष्ट हुई तो अपने शरीर से मैल उतारकर एक पुतला बनाया। उसे स्नानागार के बाहर खड़ा कर दिया ताकि कोई अन्दर प्रवेश न कर पाये। पर बीच में ही महादेव जी आ गये। उनके साथ मेरी घनघोर लड़ाई एक हजार वर्ष तक हुई *[हंसी]* यानि तब तक मेरी माता जी स्नानागार में स्नान करती रहीं। *[बीच में एक बहिन-वाह रे! स्नान]* इस लड़ाई में महादेव जी ने

---

१. देखो, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण गणेश खण्ड ॥

मेरा शिर काट डाला। पार्वती माता के रोने पर हथिनी का सिर लाकर मेरे सिर के स्थान पर जोड़कर मुझे जिन्दा कर दिया *(अच्छा!)* इस प्रकार कार्तिकेय एवं गणेश हम दो पार्वती माता के पुत्र हैं।

एक मजे की बात और सुनें इस कथानक के अनुसार पार्वती जी मेरी माता तथा शिव जी मेरे पिता हैं किन्तु पार्वती एवं शिव जी के विवाह के समय भी गणेश की पूजा हुई थी, यह पौराणिकों का कथन कितना विचित्र है। इस विषय में गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं :-

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोई सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि[२]।।

अर्थात् विवाह से पूर्व शम्भु पार्वती ने गणेश की पूजा की। इसमें कोई यह न सोचे कि कैसे की ? क्योंकि देवता लोग अनादि होते हैं। वाह रे खोपड़ी! यदि गणेश देवता की अनादि मानकर उन्होंने पूजा की *(क्योंकि अपने विवाह में अपने पुत्र की पूजा कैसे करते)* तो 'पुराणों का गणेश की उत्पत्ति विषयक गप्पाध्याय झूठा है' यह क्यों नहीं मान लेते। ऋषि दयानन्द ने भी तो यही कहा कि **'गणेश'** उसी अनादि ओ३म् (ईश्वर) का अपर नाम है कोई भिन्न नहीं, फिर उसे अनादि ईश्वर का ही वाचक मानिये, झूठी कथा क्यों मानते हैं? मैं अब अपनी उत्पत्तिविषयक तुक्केबाजी के विषय में क्या कहूँ? आप सब बुद्धिमान हैं सोचिये।

भाइयो एवं बहिनों ! अब और सुनिये एक तरफ मेरी उत्पत्ति पार्वती माता के मैल से बताई गई है पर दूसरी तरफ सभी छली, कपटी, साधु, असाधु, बेईमान जनों को जब अतिरिक्त धन की चाह होती है तो बड़ी श्रद्धा से मेरा स्तुतिपाठ यह कहते हुए प्रारम्भ करते हैं-

वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ!।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा।।

---

२. देखो, रामचरितमानस बालकाण्ड दोहा १०० ।।

(वाह! स्तुतिपाठ तो कमाल का है)

और भी-

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा
माता तुम्हरी पार्वती पिता महादेवा
लड्डुन के भोग चढ़ें सन्त करें सेवा
जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा

(सभी -व्यंग से वाह ! मजा आ गया)

भला बताइये ! ऐसी असम्भव स्तुतियां किस काम की हैं? क्या करोड़ों सूर्यों का ताप किसी से भी तीन काल में भी सहन किया जा सक़ता है?

(दरबारी बहिनों का कहना-नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं)

अब थोड़ी वास्तविकता सुनें- 'गण संख्याने' धातु से गण शब्द बनता है। गण+ईश = गणेश। गणेश शब्द का अर्थ है- **गणानामीशः गणेशः** अर्थात् जो गण = समुदाय का अधिपति, नेता हो। इस प्रकार इस शब्द का परमेश्वर या राजा अर्थ है। यजुर्वेद २३।१९ का **'गणानां त्वा गणपतिꣳ** [1]**हवामहे** आदि मन्त्रों में कहे गये गणपति शब्द का भी

---

१. इस मंत्र का अर्थ उव्वट महीधर ने अत्यन्त ही अश्लील किया है किन्तु महर्षि दयानन्द ने इसका सुन्दर अर्थ इस प्रकार किया है-

हे समूहाधिपते ! आप मेरे 'गण' सब समूहों के पति होने से आपको 'गणपति' नाम से ग्रहण करता हूँ। तथा मेरे प्रिय कर्मकारी पदार्थ और जनों के 'पति' पालक भी आप हैं इससे आपको 'प्रियपति' मैं अवश्य जानूँ एवं मेरी सब निधियों के पति होने से आपको मैं निश्चित 'निधिपति' जानूँ। हे वसो ! सब जगत् जिस सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ उस गर्भ स्वसामर्थ्य का धारण और पोषण करने वाला आपको ही मैं जानूँ। सो ग़र्भ सबका कारण आपका सामर्थ्य है, यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है। यह नवीन जगत् तो जन्मता और मरता है परन्तु आप सदैव अजन्मा और

यहां अर्थ है। इस प्रकार गणेश की पूजा से तात्पर्य परमेश्वर की प्रार्थना अथवा गणराज्य के नेता के प्रति श्रद्धा को व्यक्त करना है। यह भी सम्भव है कि गणेश शब्द का गणनायक या राजा अर्थ मानकर किसी मूर्तिकार या चित्रकार ने गणनायक के गुणों को देखकर गणेश के रूप की कल्पना इस प्रकार की हो कि 'राजा के कान या नांक बड़े सतर्क होने चाहियें अत: हाथी के कान और सूंड़ लगा दिये हों। पेट बड़ा गहरा होना चाहिए अत: पेट बड़ा बना दिया हो' पर यह सब कल्पना ही तो है। यदि ये कार्टून किसी मूर्तिकार ने गणनेता के लिये बनाये भी हों, तो ये सच तो नहीं। फिर ये सारी बातें मेरी दुर्दशा के लिये हैं और तो कुछ नहीं। तस्कर लोग एक ओर लक्ष्मी की पूजा में व्यस्त हैं, दूसरी ओर मेरे ऊपर सिन्दूर लेप रहे हैं। आज की जनता को यह भी न पता कि परमेश्वर तो ईमानदारी से खुश होता है।

मेरी समझ में नहीं आता कि इन मूर्खों को ऐसी-ऐसी गप्पें हांकने और झूठी कथा कहानियाँ बनाने का समय कहां से मिलता था ? क्या इनको अष्टाध्यायी नहीं याद करनी पड़ती थी?

(सबका खिलखिलाकर हंसना, बीच में एक बहिन-हां हां कुछ नहीं करना पड़ता था)

और कुछ नहीं पढ़ना पड़ता था। अब देखो सभी विवाहों में गोबर के गणेश बनाकर वर और वधू से मेरी पूजा करवाई जाती है एस.एस. सी.

अमृतस्वरूप हैं। आप की कृपा से अधर्म अविद्या दुष्टभावादि को 'अजानि' दूर फेकूँ तथा हम सब लोग आपकी ही 'हवामहे' अत्यन्त स्पर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं। सो आप अब शीघ्र हमको प्राप्त होओ। जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी कभी ठिकाना न लगेगा ॥ द्र. आर्याभिविनय द्वि० प्र० मन्त्र ४६॥

पास वर-वधू की भी ऐसे समय अकल खराब हो जाती है, वह भी गोबर के गणेश पूजने में लगे हैं।

भाइयो एवं बहिनों! मैंने आपको इतनी सच्चाई बताकर आप लोगों की आंखें खोल दी हैं। झूठी बातों से सचेत कर दिया है। अब तक आप लोग इन झूठे गणेश जी की पूजा किया करते थे। जिनका सिर पैर नहीं उन्हें लड्डू खिलाते थे पर अब तो आपको मुझे लड्डू खिलाने चाहियें क्योंकि मैंने आपको सच्चाई बताई है।

(जनंता— भी-हाँ हाँ जरूर खिलायेंगे)

अब से आप कोई शुभ कार्य प्रारम्भ करने से पहले इन लम्बोदर गणेश के फोटो की पूजा मत किया करिये। यज्ञ करके उस परब्रह्म जो घट-२ वासी है उसकी पूजा किया करिये। और हाँ याद रखियेगा, मेरे लड्डू आप पर उधार हैं।

(अन्त में श्रोताओं ने लड्डू के लिये खूब रुपये पुरस्कार में दिये)

तुलसी और दूर्वा-

सत्यशीले देवि! उपस्थित सज्जनों !

विभिन्न देवी देवताओं का प्रतिनिधित्व करने वाली आप सभी बहिनों की वक्तृतायें मैं बड़ी देर से सुन रही थी। मैं तो किसी का भी प्रतिनिधित्व नहीं कर रही पर इतना कहना चाहती हूँ कि आप लोगों की मानवीय आकृतियां तद्यथा-हनुमान् सीता आदि का ही अपलाप इन जड़ पूजकों ने नहीं किया अपितु एतादृश लोगों ने अशरीरी तत्वों की भी शरीर रूप में कल्पना कर दुनियां के लोगों से उन्हें भी पूजने के लिये बाध्य किया। मैं कहने के लिये तो इस समय यह खड़ी हुई हूँ कि इन लोगों ने इतना ही नहीं किया अपितु ऐसे लोगों ने जड़,वृक्ष, लता,गुल्म,कंकरीट आदि को भी देवी देवता की संज्ञा देकर उन्हें भगवान् बताकर अक्षत भोगादि लगवा दिया। पहले वाले देवताओं से अभी इनका पेट नहीं भरा था अतः दूर्वा-माई, कदली-माई, तुलसी माता इन सबकी चन्दन टीका सहित पूजा करा दी।

वास्तविकता यह थी कि ये ओषधियाँ हमारे शरीर के लिये परम गुणकारक हैं पर उसे न समझकर इन स्वार्थान्धों ने लोगों को इनकी पूजा बताकर अंधेरे कुएँ में डाल दिया है। अब तुलसी की उपयोगिता को ही लीजिये। इसका नाम ही ''**तुलामस्यतीति तुलसी**'' अर्थात् जिसके अनुपम गुणों के कारण किसी से तुलना ही नहीं हो सकती, संकेत करता है कि "यह एक महौषध है" जो अनुपम है। चरक और सुश्रुत जैसे महत्वपूर्ण आयुर्वैदिक ग्रन्थों में इसे वात-कफनाशक, हिचकी, बुखार, दर्दनाशक,

खून खराबी, हृदय-विकार आदि को दूर करने वाली औषधि कहा[1] है।
हिस्टीरिया[2] एवं पुरुष दौर्बल्य जैसे महान् रोगों की यह अचूक औषध है। इसी प्रकार दूर्वा = शीतिका = दूब घास जिसे ग्रामीण भाषा में दूबड़ा भी कहा जाता है इसका शाब्दिक अर्थ है-

"दूर्वति नाशयति रोगान् सा दूर्वा" यह पित्त, कफ नाशक होने के साथ-२ स्त्रीरोगों के लिये महौषध है एवं घावों को ठीक करने वाली एन्टीसेप्टिक है अतः प्रत्येक घर में तुलसी का पौधा तथा दूर्वा-घास और हरीतक्री जैसी ओषधियां होनी चाहिएं पर मूर्ख लोग यह सब तथ्य न जानकर इसकी उत्पत्ति की विचित्र कहानियां गढ़ के बैठ गये। तद्यथा-- समुद्रशायी विष्णु जी के हाथ पैरों के टूटे हुये लोम समुद्रतट पर घास के रूप में उग गये। उसी का नाम दूर्वा है। तुलसी विषयक गपोड़ा तो 'तुलसी उपाख्यान' का देखते ही बनता है, सो जरा सुनिए-

यह तुलसी देवलोक में जलन्धर नामक पुरुष की पत्नी वृन्दा के रूप में रहती थी। विष्णु द्वारा गड़बड़ी पैदा किये जाने पर यह अभिशप्त होकर मर्त्य लोक में तुलसी के रूप में पैदा हुई। देवलोक की दुष्टा स्त्री मर्त्यलोक में तुलसी के रूप में पुज गई। शालिग्राम की बटिया जो और कुछ नहीं इनके विष्णु ही हैं उस बटिया के साथ तुलसी का विवाह पौराणिक पण्डित कराने लगे। भला बताइये कितनी भ्रष्ट कथा के साथ तुलसी महौषधि का बेतुका सम्बन्ध जोड़कर रख दिया जिससे इनके गुणों एवं उपयोगी रहस्यों को भी लोग भूल गये। भला कभी वृक्ष और पत्थर का भी विवाह हो सकता है। बिना पदार्थ-विद्या को जाने कोई भी

---

१. हिक्काकासविषश्वासपार्श्वशूलविनाशनः ।
पित्तकृत्कफवातघ्नः सुरसः पूतिगन्धहा ॥ (चरक.सूत्रस्थानम् २७।१६७)

२. द्र. चरक. चिकित्सितस्थानम् १०।४३-४८ तक ॥

शारीरिक लाभ या भौतिक सुख प्राप्त नहीं कर सकता पर गप्पियों ने लोगों को इस शिक्षा से दूर कर ढोंग पूजा करवाकर दुःख के गड्ढे में ही डाल दिया। चाहिए तो यह कि तुलसी आदि वृक्षों को उपयोगी स्वच्छ खाद आदि देकर उन्हें अच्छी प्रकार बढ़ाया जाये न कि सिन्दूर का टीका लगाकर धूप-दीप जलाकर उसके सामने हाथ जोड़ लें। सिन्दूर में तो पारा होता है, उसका टीका लगाने से तुलसी का पौधा सूख जाता है। उसे सुखाकर क्या उसकी पूजा हुई?

अब कहिये ! हनुमान्जी का प्रतिनिधित्व करने वाली मेरी बहिन! आपको तो मनुष्य होकर पशु बनना पड़ा, पर! इन्हें वृक्ष गुल्म होकर भी भगवती देवी बनने का सौभाग्य मिला। पर! सब कुछ चौपट! अर्थ क्या निकला, सिवाय मूर्खता फैलने के। इससे लोग इन वस्तुओं के सामान्य लाभों को भी भूल गये और जन समाज के लिय ये व्यर्थ हो गये यानि इनसे रोग निवारण का कोई लाभ न उठाया जा सका। यह सब अनर्थ इन झूठी कथाओं के कारण ही हुआ। अस्तु।

मैंने सोचा इन बेचारे जड़ वस्तुओं की वकालत करके इनकी वास्तविक उपयोगिता की ओर कौन दृष्टिपात करायेगा? अतः मैं बीच में ही खड़ी हो गई। क्षमा चाहती हूँ।

(तालियों की गड़गड़ाहट)

भगवान् विश्वकर्मा-

माताओ! बहिनों एवं भाइयो!

अभी आप काली, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि की दुर्दशा का वर्णन सुन रहे थे पर मुझ विश्वकर्मा की भी स्थिति कम हास्यास्पद नहीं हैं। तो सुनिये! मुझ विश्वकर्मा की आप बीती।

प्राचीन काल में एक बहुत बड़े शिल्पी विश्वकर्मा नाम के महापुरुष हुये हैं। जो अर्थवेद अर्थात् शिल्पशास्त्र के आविष्कर्ता माने जाते हैं। जिन्हें सभी लोहार, कुम्हार आदि कारीगर अपना पूर्वज मानते हैं। ये गृहनिर्माण, शस्त्रनिर्माण, विमान निर्माण आदि कौशलों के धनी थे। इनके पिता प्रभासवसु एवं माता बृहस्पति की भगिनी योगसिद्धा 'लावण्यमयी' हैं। कालान्तर में अपने को परम भक्त, भगवान् का सेवक मानने वाले इन पूजकों ने इतिहास प्रसिद्ध इन महापुरुष विश्वकर्मा को विश्व का रचयिता मान लिया और इनकी पूजा चला दी।

सफेद लम्बी दाढ़ी किसी बाबा जैसी, चार भुजायें जिसमें किसी में पुस्तक तो किसी में कमण्डलु और वंशी आदि लिये बड़े आराम से इन्हें बैठा दिखाया जाता है। इनकी पूजा से प्रायः सभी परिचित हैं। बिहार, बंगाल, आसाम आदि प्रदेशों में जहां १७ सितम्बर को यह पूजा होती है वहीं हरियाणा, राजस्थान, पंजाब आदि में माघ मास की शुक्ला त्रयोदशी को और पश्चिम के कई स्थानों में दशहरा के दिन भी इनकी पूजा की जाती है और अन्त में वही गति जो दुर्गा, काली, सरस्वती आदि की इन लोगों ने कर रखी है कि इतना पूजन-अर्चन सत्कार करने के बाद भी मेरे लिये इनके घर में स्थान नहीं है। इसलिये दूसरे ही दिन मुझे गंगा में डुबो कर ही ये दम लेते हैं। और ले जुलूस डम-डम, बम-बम करते, ढोल पीटते, नाचते-गाते, खुशियाँ मनाते इन निकम्मों की भीड़ सड़क पर उतर आती है, क्यों? मुझे बहाने के लिये। ताकि अब कोई शिल्प कला कौशल इस देश में रहने न पावे, क्यों? यही तो इनका तात्पर्य हुआ।

वेद-वेदांगों केअध्ययन से पता चलता है 'विश्वकर्मा' यह गुणवाचक नाम है व्यक्तिवाचक नहीं। जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है- **'विश्वानि कर्माणि यस्य येन वा सः विश्वकर्मा'** अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि के कार्य जिसके या जिसके द्वारा सम्पन्न होते हैं वह विश्वकर्मा है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार जड़-चेतन के रूप में अनेक विश्वकर्मा इस सृष्टि में होंगे। तद्यथा- परमपिता परमात्मा सबसे बड़ा और प्रथम विश्वकर्मा है जिसके बिना सृष्टि का एक तृण भी न हिल सकता है न बन सकता है। जगत् को निरन्तर दिन-रात के विभाजन द्वारा गति देने वाला सूर्य तथा तीनों लोकों में व्याप्त सबको स्पन्दित कर देने की क्षमता रखने वाला वायु भी 'विश्वकर्मा' कहा गया है। सृष्टि के सम्पूर्ण कार्य जिसकी पीठ पर होते हैं जो अन्नौषधि को जन्म देकर सबका पालन करती है वह ममतामयी धरती माता तथा अग्नि जो सब कामों में अग्रणी है जिसके बिना कोई कार्य नहीं होता वह भी 'विश्वकर्मा' है। प्राणियों के प्रत्येक कार्यों की प्रस्ताविका वाणी भी 'विश्वकर्मा' कही गई है। तात्पर्य यह हुआ कोई प्रकाश कार्य से, कोई धारण कार्य से, कोई गति देने आदि विभिन्न कार्यों के कारण 'विश्वकर्मा' कहे जाते हैं, कहे जा सकते हैं। जिनकी बहुत लम्बी सूची भी बन सकती है। पर इन पृथ्वी-सूर्य-चन्द्र-जल-वायु आदि को भी गति देने वाला प्रकाशित करने वाला तो वह जगन्नियन्ता परमेश्वर ही है अतः मुख्य रूप से विश्वकर्मा शब्द से उसका ही ग्रहण हम सबको करना चाहिये। जैसा कि ऋग्वेद (१०।८१-८२) में कहा गया है-

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ।।

अर्थात् - विश्वकर्मा परमात्मा ही सारे संसार का धाता विधाता है। सारे जगत् में जिसकी आँखें हैं जो सारे संसार को देख रहा है जिसकी कार्य करने वाली भुजायें और गति करने वाले पैर मानों सारे संसार में

व्याप्त हैं, वह एक ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का रचयिता 'विश्वकर्मा' है। पर लोगों ने इन वेद मंत्रों के सही अर्थ न समझकर उस एक अकाय परब्रह्म की सिर-पैर, आँख-मुख वाली मूर्ति बना डाली और सबसे बड़ा कमाल तो यह किया कि जो रामायण महाभारत काल के शिल्पी विश्वकर्मा थे उनको अनादि विश्वकर्मा के साथ जोड़ दिया और पूजा चला दी, अब अधिक क्या कहूँ? आप सब स्वयं सोच सकते हैं।

ब्रह्मा जी-

भाइयो एवं बहिनों ! अति प्राचीन काल हुये श्रीयुत ब्रह्मा जी ने इस धराधाम को अलंकृत किया था। चारों वेदों का भली प्रकार ज्ञान इन ब्रह्मा जी ने प्राप्त किया था। वे बड़े विद्वान् थे अत: लोगों ने उन्हें चतुर्मुख की उपाधि दे डाली इसका अर्थ हुआ-

"चत्वारो वेदाः मुखे सन्ति यस्य सः चतुर्मुखः" अर्थात् चार वेद हैं मुख में उपस्थित जिसके वह ब्रह्मा जी हुए। यहां मध्यमपदलोपी बहुव्रीहि समास समझना चाहिए, पर बाद के लोगों ने उनकी इस उपाधि पर ध्यान न देकर ब्रह्मा जी की पुष्कर में एवं अन्यत्र भी ऐसी मूर्ति बनाई जिसके चार मुख थे। व्याकरण का ऐसे लोगों को ज्ञान नहीं, विद्या से काम नहीं, इतिहास पढ़ते-पढ़ाते नहीं, तो करें क्या?

(बीच में एक छोटी बहिन-बूटी पीसें)

एक और भी बात है 'ब्रह्मा' वस्तुत: परमात्मा का वाचक शब्द है। आगे चलकर पूर्वोक्त वेदज्ञ शरीरधारी पुरुष ने भी अपना नाम ब्रह्मा रख लिया इस प्रकार परमात्मा का कथन करने वाले एवं शरीरधारी ब्रह्मा में तो अन्तर हुआ, पर नाम सादृश्य देखकर मूर्ति बनाने वाले श्रीमन्तों ने यही प्रसिद्ध कर दिया कि शरीरधारी चार मुख वाले ब्रह्मा ही चारों वेदों के रचयिता हुए। पुराणकारों ने तो ईश्वर का अवतार ब्रह्मा को बताकर फिर उसकी ऐसी दुर्गति की है कि वे मनुष्य ही नहीं लम्पट से प्रतीत होते हैं।

मैं तो सोचती हूँ कि इस सभा को अलंकृत करने वाली माननीया माता विद्याधरी जी इन सबकी काली करतूतों का जिन्होंने देवी-देवताओं

के चरित्रों को कलंकित किया है, उनके विषय का व्याय कर ही क्या सकती हैं इनको तो परमपिता ही यथोचित दण्डित कर सकता है पुनरपि ईश्वर एवं धर्म विषयक व्यवस्था हम सभी उनसे चाहते हैं। सत्यग्रन्थों का प्रचार एवं वैदिक वाङ्मय के शब्दों के रहस्य जानने तथा सत्य इतिहास को समझकर ही हमारे पाखण्ड दूर हो सकते हैं।

(माता विद्याधरी जी समर्थन में सिर हिलाती हैं)

●

वेदायं पुरुषं निरन्तरमजं ध्यायन्ति गायन्ति च
प्राणायामपरायणैश्च सततं यो गीयते योगिभिः,
सोऽयं ब्रह्मशिवेश्वरप्रणवसत् कर्त्रादिशब्दैः स्मृतो
नित्यं- नः प्रददातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।।

जिस देवाधिदेव के अनन्त गुणों के कारण अनन्त नाम हैं वह जगदीश्वर हमारे मनोरथों को पूर्ण करे।

विष्णु जी-

अब सुनिए- विष्णु जी की कहानी! मेरे द्वारा बखानी! विष्णु जी की दशा देख लीजिये-इनकी 'चार तो भुजायें हैं, गरुड़ इनकी सवारी है। अब देख लीजिये- समुद्र में पड़े ये सोये रहते हैं। लक्ष्मी इनकी पत्नी हैं और इनका नाम विष्णु भगवान् हैं'। जब ये सोये रहते हैं तो सृष्टि कौन चलाता है? अब देख लीजिये मैं तो अपनी पूज्या बहिन जी से रोज ही सुनती रहती हूँ कि विष्णु का अर्थ है **'वेवेष्टि सर्व जगत् इति विष्णुः'** अर्थात् जो संसार के कण-कण में व्यापक हो उसे विष्णु कहते हैं। जब वह कण-कण में व्यापक है तो क्षीर सागर में पड़ा कैसे सोता रहेगा? यज्ञ को विष्णु इसीलिए कहा है कि क्योंकि अग्नि में डाले हुए पदार्थ सूक्ष्म होकर फैल जाते हैं। सूर्य को भी विष्णु कहते हैं क्योंकि वह भी अपनी किरणों द्वारा बहुत दूर-दूर तक पहुँच जाता है पर अब देख लीजिये--इन लोगों को वेद के मंत्रों के अर्थ कुछ भी समझ में नहीं आते।

(दरबारी एक नन्हीं बहिन--तो आपको आते हैं? विष्णु का प्रतिनिधित्व करने वाली बहिन-आत्मविश्वास से-'जी'!)

वैसे तो इनको देव बताया है। और विष्णु शिव महादेव आदि की तू-तू मैं-मैं, हाथा पाई भी कराई है। मैं सोचती थी कि हम लोग ही आपस में वाद-विवाद कर लेते हैं पर ये देव तो लड़ाई की खान हैं। भला देव भी कभी लड़ते हैं? वास्तव में ये तो एक ही परमात्मा के नाम हैं पर मूर्खों ने इन्हें अलग-अलग बनाकर मनुष्य की तरह लड़ता दिखा दिया। इसलिए ऐसी झूठी बातों को कभी नहीं मानना चाहिए।

•

शिव जी-

सत्यशीले देवि! अभ्यागत महानुभावो!

शिवजी यानी शंकर महादेव जी की मैं प्रतिनिधि हूँ। इस दरबार में उपस्थित एक भगवती ने अभी तैंतीस करोड़ देवताओं की बात कहकर सबको आश्चर्यचकित किया था पर मैं तो अकेले ही अपने नाम की ३३ करोड़ से भी अधिक संख्या को उपस्थित कर सकती हूँ! क्योंकि पाखंडियों की उक्ति के अनुसार काशी में जितने कंकर हैं उतने ही शंकर हैं। सो कंकर तो अपरिमित ही होगें। वैसे भी काशी की गली-गली में हाथ में त्रिशूल लिए हुये जटाजूट बढ़ाये, मुँह से बम बंम करते, दर दर की ठोकरें खाते मेरे नाम पर भीख मांगते हुए लाखों गंजेड़ी भंगेड़ी मिल जायेंगे।

प्रतिमा पूजकों के अनुसार शिवजी की जटा जूट से विशाल गंगा नदी निकलती है ऐसा माना जाता है, पर इन नकलची शिवों को तो नल में मुँह लगाकर ही प्यास बुझाते हुए देखा गया है। जिनकी जटा-जूट से विशाल गंगा निकले उन्हें नल के जल से प्यास बुझानी पड़े, यह कैसी बिडम्बना है? शिवजी का वाहन बैल माना गया है। पर ऐसे ढोंगी शिवों को तो बैल पर चढ़े नहीं देखा गया है। हां 'विदाउट टिकिट' ट्रेनों में गन्दी जगहों में बैठकर यात्रा करते हुए बहुधा इन्हें देखा जा सकता है। कभी-कभी टिकिट चेकर इन शिवगणों को पकड़ भी लेते हैं फिर इनकी नानी याद आ जाती है। विचार कीजिये! इन महादेव जी को बैल ही सवारी मिली और कुछ न मिल सका। आज भारत के प्रधानमंत्री जो मानव हैं वे हेलीकॉप्टर में घूमते हैं और भगवान् शिवजी आज के प्रगतिशील युग में भी बैल पर ही घिसिट रहे।

शिवजी के मस्तक पर आधा चन्द्रमा और गले में साँपों की माला है यह भी पुराणों का कथन है। सो ये चूने की लकीर खींचकर मस्तक में चन्द्रमा एवं विष के टूटे हुए दांतों वाले साँपों को गले में लटकाकर पूरा शिव बनने का प्रयत्न करते हैं। यह है बेतुका स्वांग श्री शंकरजी का।

भाइयो एवं बहिनों! 'शिव' कल्याणकारी परमात्मा का वाचक नाम है। परमात्मा के अनन्त गुण हैं। तदनुसार उनके अनन्त नाम भी हैं यह आप जानते ही हैं। अमरकोष में धूर्जटि, कपर्दी, विरूपाक्ष, गंगाधर, व्योमकेश आदि ४८ नाम मुझ शिव के गिनाये हैं। वेद में कपर्दी, भीमः, विलोहितः, आदि विशेषण तो शिव रुद्र के आये हैं। पर धूर्जटि = भारी है जटा-जूट जिसके, गंगाधर = गंगा को धारण किया है जिसने, ये सब शब्द तो पौराणिक गाथाओं के अनुसार घड़े हुए हैं। स्पष्ट है कि अमरकोष जैसे अनार्ष ग्रन्थ को जो भी शब्द भंडार संग्रह की दृष्टि से पढ़ेगा तो पौराणिक भी साथ बने बिना नहीं रहेगा। इसलिए ऋषि दयानन्द ने इस कोष को पठन पाठन से त्याज्य बताया है। शिव के लिए वेद में आये हुए[1] कपर्दी आदि नामों का अतिसुन्दर अर्थ व्युत्पत्तिपरक ऋषि दयानन्द ने किया है ऐसी यौगिक प्रक्रिया से ही मंत्रों के व्यापक अर्थ हो सकते हैं। मन्त्रों का मन्त्रत्व भी तभी सुरक्षित रह सकता है।

परमात्मा के अतिरिक्त शिव[2] नाम के एक महात्मा भी इस धरती

---

१. यजुर्वेद के १६ वें अध्याय में कपर्दी, शम्भु, त्र्यम्बक, नीललोहित आदि शब्द शिव के लिये आये हैं। जो वेद का ज्ञान नित्य होने से व्यक्ति विशेष के नाम कदापि नहीं हो सकते । निर्वचन प्रक्रिया द्वारा ही ऐसे शब्दों के सही अर्थों का ज्ञान किया जा सकता है ।

२. महाभारत के अनुशासनपर्व में आये दानधर्मपर्व के अ० १७ में "शिवसहस्रनाम" वाले शब्द महात्मा शिव के महान् तपस्वी होने को प्रकट करते है। । तद्यथा स्थिरः,

पर पैदा हुए थे। जो अत्यन्त शुभ गुणों से युक्त महापुरुष थे। सदैव तपस्यारत रहते हुए, पर्वतों की गुफ़ाओं में निवास करते थे। इनकी धर्मपत्नी 'देवी पार्वती' थीं पर मूर्खतावश लोगों ने इन शिवजी महाराज को ही सृष्टि संहारक भगवान् बनाके रख दिया और इनके नाम के पुराण भी रच डाले। जिनमें इनकी वो छीछालेदर की है कि सभ्य समाज में ये बातें कहने योग्य भी नहीं। जहां तक शिव जी के जटा-जूट से गंगा निकलने की गप्प है उसका रहस्य इस प्रकार है। अलक कहते हैं चोटी को, चोटी पर्वतों की भी होती है और शिर की शिखाओं की भी। किसी ने किसी से कहा कि -गंगा नदी का उद्गम स्थान शिवालक है। शिवालक हिमालय की उन चोटियों को कहते हैं जहां से गंगा नदी निकलती है। बस मूर्खों ने ये नहीं सोचा और शिव की अलक अर्थात् जटाओं से गंगा की उत्पत्ति करा दी। इतनी विशाल नदी जटा-जूट से निकल भी सकती है या नहीं? भला यह इन भोले भक्तों को क्यों देखना था। ठगों के सम्प्रदाय ने शिवजी को भी पुजवा दिया और गंगा नदी को भी। एक पौराणिक ने कहा-

गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।।

ब्रह्म. पु. १७५।८२।।

स्थाणुः ऊर्ध्वशायी आदि शब्द उनके जितेन्द्रियतादि गुण के परिचायक हैं। ये महात्मा परम दयालु थे। जब देवों ने पार्वती एवं शिवजी के विवाह के दिन ही आकर असुरों से रक्षार्थ प्रार्थना की तो वे तत्काल असुरों से युद्ध करने चले गये। दीर्घकाल तक वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये देवताओं के कल्याणर्थ युद्ध में प्रवृत्त रहे तभी इनके विवाह वाली रात्रि 'शिवरात्रि' कहलाई जिसके मनाने का विकृत स्वरूप आज देखने में आ रहा है। पौराणिकों ने ऐतिहासिक (मरणधर्मा) शिव एवं वैदिक शिव (परात्मा या योगी) दोनों को एक कर दिया, तथा नाना प्रकार की शिवपुराण में दारुवन वाली अश्लील कथायें इनके नाम पर जड़कर दोनों के स्वरूप को अत्यन्त लाञ्छित करके घोर अनर्थ कर डाला।

दूसरे पाखण्डी ने झट सोचा अरे! मेरे भक्त को गंगा गंगा ऐसा मुँह से बोलने और जुबान हिलाने का कष्ट क्यों सहना पड़े । ऐसा उपाय सोचो कि बिना कुछ बोले ही सारे पाप नष्ट हो जायें तो दूसरे ने श्लोक बनाया--

गंगेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम्।
कीर्तनादपि पापानि दर्शनात् गुरुकल्मषम् ।।

अर्थात् गंगा शब्द के स्मरण मात्र से ही सारे पाप नष्ट हो जाया करते हैं। कीर्त्तन कर लेने पर तो सूक्ष्म पाप और दर्शन कर लेने पर अपने तथा गुरु तक के पाप नष्ट हो जाते हैं। वाह रे लोगो! पाप करके उससे बचने का तो बड़ा ही सस्ता उपाय तुम लोगों ने निकाल लिया है। श्रीकृष्ण जी महाराज कहते हैं-

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"

अर्थात् किये हुए शुभ या अशुभ कर्मों के फल अवश्य भोगने पड़ेंगे और ये श्रीकृष्ण जी के झूठे कीर्तन करने वाले भक्त (पौराणिक) कहते हैं कि पाप कर लो पुनः गंगा का स्मरण मात्र कर लो तो उसका कोई कुफल भोगना नहीं पड़ेगा। क्या बढ़िया पाप करने का लाइसेन्स है। क्या अधिक कहूँ? बड़ी आशाओं के साथ इस दरबार में आज उपस्थित हुई हूँ कि कुछ सही निर्णय यहाँ अवश्य लिए जायेंगे। मैं आज इस दरबार की आयोजिका बहिनों को हृदय से धन्यवाद देना चाहती हूँ जिन्होंने देवी देवताओं के नाम पर हो रहे इन कुकृत्यों पर कुछ कहने और यथार्थता का बोध कराने का हम सबको अवसर दिया है। मेरी दृष्टि में आज की इस विशाल सभा का बड़ा महत्व है। अस्तु, एक बार पुनः सबको साधुवाद देती हूँ।

माता विद्याधरी देवी

आदरणीय महानुभाव! मेरी स्नेहिल नन्हीं एवं समवयस्का बहिनों!

बहुत दिनों से गुफाओं एवं कन्दराओं में निवास करने के पश्चात् मैं भारत के निचले भू-भाग पर उतरकर जब आई तो अचानक यहाँ सम्मिलित होने का सौभाग्य मुझे मिला। मैं धार्मिक क्षेत्र में इस आर्यावर्त्त देश की गिरावट से, गुफाओं में निवास करने के कारण सर्वथा अपरिचित थी। मुझे एक नई जानकारी मिली। मुझ निर्लिप्सु का दुख दर्द बहुत बढ़ गया। आप सबने मेरा सम्मान मेरी शक्ति सामर्थ्य से अधिक बढ़ाया है। आपकी भावना पवित्र है किन्तु मेरी सीमायें भी स्वल्प हैं इसे मानना ही होगा। मैं तो इतना ही कह सकती हूँ कि अपने जन्म जन्मान्तर के आध्यात्मिक आनन्द की भी भेंट चढ़ाकर मैं इस पाखण्डवाद के निर्मूलन में अपने आप को झोंक देना चाहती हूँ। *(दरबारी बहिनों द्वारा तालियों की गड़गड़ाहट)* आज के देवी देवताओं के अपमान तथा लोमहर्षक वृत्तान्तों को सुनकर मेरा हृदय कम्पायमान हो उठा है। मैं बहुत कुछ समझ गई हूँ आप सब बहिनें बड़ी बुद्धिमती हैं इसलिए बड़े सारगर्भित वचन कहे हैं। मेरी हजारों वर्षों के काल की यात्रा आप सबने अपनी वक्तृताओं से करा दी है। अपने पूर्वजों का अपमान करने वाले एवं इस जगत् को मिथ्यापथ दिखाने वाले वे लोग अवश्य ही इस समय कीट पतंगों का जीवन व्यतीत कर रहे होंगे क्योंकि मृषा बोलने वाले वंचकों की गति मनुष्य जीवन से इतर हुआ करती है। हो सकता है भूकम्प अथवा प्लेग आदि व्याधियों से एतादृश लोगों ने अपनी जीवन लीला को समाप्त किया[१] हो और अगला

---

१. माता विद्याधरी का यह कथन गीत की, "इनको भेज दो प्लेग जीता बचे न कोई एक" इस पंक्ति के आधार पर है।

जीवन तो उनका अन्धकारमय हो ही सकता है। इस समय मेरा रोम-रोम व्यथित और उद्विग्न है। मेरे हाथ में भीष्म पितामह जैसा कोई राजदण्ड तो नहीं तथापि आपलोगों ने मुझे न्यायकारिणी कहा है तो सुन लें मेरा तो यही न्याय है कि आप सब उच्चकोटि की विद्या प्राप्त करें, कष्टों से न घबरायें और सैकड़ों हजारों की संख्या में तैयार होकर पाखण्डों का खण्डन करें तथा लोगों को सच्चाई का दिग्दर्शन करायें *(वाह, वाह)* अब मैं भी पुनः गुफाओं में लौटकर कभी नहीं जाऊँगी। मेरे आगामी जीवन का कार्य यही होगा। आज के मेरे इस अरुन्तुद कष्ट का यही परिहार होगा। भगवान् आप लोगों के मार्ग को भी प्रशस्त करें। मैं सबकी बड़ी अनुगृहीत हूँ। आप सबको साधुवाद देती हूँ और अपने लिए आप से आशीर्वाद चाहती हूँ।

[नोट-तालियों की सामूहिक भारी गड़गड़ाहट एवं वाह ! वाह! इसके साथ ही सभा विसर्जित]

विद्यालयीय प्रकाशन सूची

१. काशिकायाः समीक्षात्मकमध्ययनम् - शोधप्रबन्ध-आचार्या डा० प्रज्ञा देवी १००)
२. गोपथब्राह्मणभाष्यम्-सम्पादिका " चौखम्भा विद्या०से प्राप्तव्य २००)
३. अथर्ववेदभाष्यम् (१-४ काण्डात्मक) " ८०)
४. हवनमन्त्राः (पं०क्षेमकरण दास त्रिवेदी कृत) " ८)
५. सरलार्थसन्ध्या (गुरुवर्य पू०जिज्ञासु जी कृत) " ८)
६. महर्षि-दयानन्द-प्रतिपादित-वैदिकदर्शनम् " २)
७. उरुधारा नारी, ले०-डॉ० पं. प्रज्ञा देवी " १०)
८. मन्त्रमालिका, व्याख्यात्री- " ३)
९. सत्यार्थप्रकाशसम्भाषण, सङ्कलयित्री-नन्दिता स्नातिका (प्रकाश्यमान)
१०. गुरुवैभवम् (रूपक) " ३)
११. मैं बहुत खुश हूँ ले०- " ६)
१२. को राष्ट्रम् उद्धरिष्यति ले० " ५)
१३. देवसभा सङ्कलयित्री- प्रियंवदा स्नातिका ५)
१४. त्रिपदी गौः, ले०-सूर्या देवी स्नातिका ५)
१५. कन्या जीवन - ले० आर. के. सिंहल ५)
१६. वैदिक सत्संग (कैसेट्स दो भाग-सन्ध्या-बृहद् अग्निहोत्र, निर्देश सहित) ५०)
१७. भजन सुधा २५)
१८. भजनाञ्जलि - नन्दिता शास्त्री २५)
१९. संस्कृत अध्ययन की सरलतम विधि के ४४ पाठों पर आधारित (कैसेट्स १९ भाग) द्वारा-डॉ० प्रज्ञा देवी ६५०)
२०. मूल अष्टाध्यायी सूत्रपाठ (कैसेट्स ३ भाग)- आचार्या मेधा देवी ९०)
२१. वेद प्रवचन माला (पूज्या आचार्या डॉ. प्रज्ञा देवी जी के प्रवचन (कैसेट्स ४ भाग) १६०)
२२. वेद के सभी शब्द यौगिक हैं - निबन्ध " ५)
२३. यज्ञ विज्ञान - महात्मा प्रेम प्रकाश जी धूरी ५)
२४. नवग्रहों का शुभागमन- आचार्या प्रज्ञा देवी ५)
२५. सृष्टि का प्रथम नाश्ता - " ३)
२६. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशव्याख्यानमाला " ३)
२७. स्व० श्री पं० रामनारायण शास्त्री- संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त सम्पादिका-आचार्या प्रज्ञा देवी ६)
२८. स्मृतिशेष आर्यपुरुष पं० रामनारायण शास्त्री- सम्पादक- डा० श्री रंजन सूरिदेव १७५)
२९. पं० रामनारायण शास्त्री व्याख्यानमाला (कैसेट्स २ भाग) १२०)
३०. रजत-जयन्ती स्मारिका ५०)
३१. प्रस्तवन-ज्ञापिका (पूज्या आचार्या डॉ० प्रज्ञा देवी जी को अर्पित श्रद्धा सुमन) ५०)